दो शब्द

कविवर रवीन्द्रनाथ का गीत है :

आपोनारे जोबे कोरिया कृपोन,
कोने पोड़े थाके दीनो-हीनो मोन,
दुआरो खुलिया, हे उदारोनाथ!
राजोशोमारोहे ऐशो !

भगवान् का वैभव अपरिमीम है। भगवान् की अनुकम्पा भी। [illegible] भगवान् को भूले हुए मनुष्य का दैन्य भी दुर्निवार्य है। भौतिक जगत का [illegible] सुख प्राप्त करके भी मनुष्य अकिंचन ही रह जाता है। और सुख पाने की स[illegible] नहीं जाती। संसार के समस्त कोलाहल के बीच मनुष्य एकाकी बैठा सिर धुनत[illegible] रहता है।

प्रेम मनुष्य के मानस का द्वार खोल देता है। और तब उस मानस में आविर्भूत होती है भगवान् के विपुल वैभव की प्रथम प्रतीति। उस प्रतीति का प्रकृत परिचय है परित्याग की भावना। प्रणय-पात्र के लिए परित्याग। तदनन्तर संसार के समस्त प्राणियों के लिए परित्याग। प्रेम का पारावार कभी रीता नहीं हो पाता। प्रेमी जितना ही परित्याग करता है उतना ही उसका प्रेम प्रखर होता है। और प्रबुद्ध प्रेम अपने आधार को शुद्ध करता रहता है। तब प्रेम की पराकाष्ठा प्राप्त होती है। व्यावहारिक जगत का सब-कुछ खोकर भी मनुष्य पारमार्थिक जगत का सब कुछ पा लेता है।

किन्तु प्रेम का आधार यदि अपरिशुद्ध है तो प्रेम का प्रथम स्पर्श ही उसके मानस में परिग्रह जगा देता है। मानस का खुलता हुआ द्वार फिर बन्द होने लगता है। और तब प्रेमी देखता है कि जिस उपलब्धि को वरदान मानकर वह अपने भीतर छिपाना चाहता था वह अभिशाप बन चुकी है।

'प्रणय और परिग्रह'—इसी द्वन्द्व की रूपरेखा है। उपन्यास के रूप में। साधना का मानस भगवान् की भक्ति से भरा था। इसलिए उसमें प्रणय-पात्र के लिए परिग्रह नहीं जागा। किन्तु रञ्जना का मानस भगवान् की भक्ति से रीता [illegible]। उसका प्रणय रह-रहकर परिग्रह में परिवर्तित हो जाता था। और अभिशाप [illegible] जाता था।

—यायावर

न केवल रोचक तथा आकर्षक पुस्तकें इस माला के अन्तर्गत प्रकाशित हों, प्रत्युत उपयोगी तथा प्रेरणात्मक साहित्य भी सस्ते दामों में पाठकों को मिले, यही हमारा उद्देश्य है।

नटराज पॉकेट बुक्स

यायावर

पहिला परिच्छेद

: १ :

युवक द्वार पर खड़ा था। पूजाघर के द्वार पर। साँस रोके। आपाद-मस्तक अचल। जैसे वह पूजाघर में गूँजते हुए गायन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म श्रुति भी अनसुनी करना न चाहता हो।

प्रथम यौवन के प्रखर ज्वार से जाज्वल्यमान था वह युवक। छरहरी काया। ऊँची काठी। वर्तुलाकार मुख। गौरवर्ण, किन्तु किंचित् भी गर्वान्वित नहीं। विनय का ही वैभव विराज रहा था उस मुख पर। युवक का परिधान साधारण था। धोती और कुरता। पाँव की चप्पल वह अलिन्द में प्रवेश करने के पूर्व खोल आया था।

पूजाघर में किसी कोकिलकण्ठा का कलस्वर कह रहा था :

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिन्
तवावतारः खलनिग्रहाय...

पूजाघर में अपेक्षाकृत अन्धकार था। अथवा युवक को वैसा आभास हुआ। वह सूर्यालोक में से आया था, इसलिए। उसकी आँखों ने अभ्यस्त होने में कुछ समय लिया। और तब उस अन्धकार में से एक नारीमूर्ति आविर्भूत होने लगी। आगे की ओर अवनत होकर उपासीन नारीमूर्ति। रहल पर रखी हुई भागवत पर बद्धदृष्टि। पाठ आगे बढ़ा :

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्व
निरस्तमानेन च मानदेन...

युवक के कर्णरन्ध्र उस कलगान से तृप्त हो गए। और उसके नयन तृप्त हो गए उस नारीमूर्ति को निहार-निहार कर। नारीमूर्ति की पीठ

द्वार की ओर थी। शुभ्रवसना नारीमूर्ति की पीठ। और उस पीठ पर विलुण्ठित था एक कज्जल-कृष्ण केशभार। विपुल केशभार, जिसके कुञ्चित केशाग्र आसन के छोर को छू-छू जा रहे थे। भुरभुरे अन्धकार में वह मसृण केशभार और भी भव्य दीख पड़ा।

युवक के कानों ने कर्णामृत पान किया :

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्...

और उसकी दृष्टि नारीमूर्ति का अतिक्रमण कर गई। सामने चौकी पर दीप जल रहा था। धूप भी। छोटे-से पात्र में रखी हुई धूप। थाली में एक फूलमाला सजी थी। गेंदे के फूलों की पीतवर्ण माला।

नारीमूर्ति अभी भी मुखरित थी :

संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणः
यदिच्छतः स्याद् विभवः समक्ष...

युवक की दृष्टि आले पर जा टिकी। चौकी के ऊपर बने हुए आले पर। मिट्टी की दीवार पर, आले के चारों किनारे चित्रित थे। गेरू से चित्रित आले में आसन रखा था। पीतवस्त्र से आच्छादित आसन। किन्तु आसन रिक्त था। देवता की प्रतिमा प्रतिष्ठित नहीं थी उस पर।

नारीमूर्ति ने अपना स्वर कुछ और ऊँचा किया : "ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः...

और वह उठकर खड़ी हो गई। फिर उसने आगे की ओर झुक कर माला को अपने दोनों हाथों में उठा लिया। नारीमूर्ति की देहलता दीर्घाकार थी। प्रतनु दीर्घाकार। युवक ने एक बार उसको आपादमस्तक निहारा।

नारीमूर्ति ने अपने शिर के ईषत् स्पन्दन से अपनी केशराशि को आन्दोलित कर दिया। सद्यस्नात केशराशि को। और युवक के नासिका-रन्ध्र एक सौरभ-सार से आपूरित हो गए। चिर-परिचित था वह सौरभ-सार। चिर-अभीप्सित भी। युवक विभोर हो उठा।

और साथ ही युवक का धैर्य भी स्खलित हो गया। उसके कण्ठ से

खाँसने का स्वर निर्गत हुआ। अनायास ही। युवक तुरन्त सँभल गया। मौन हो गया वह। किन्तु नारीमूर्ति का ध्यान भंग हो चुका था।

नारीमूर्ति ने अपना मुख मोड़ा। बहुत ही सलोना मुख था वह। साँवला और सलोना। मुख की रेख-रेख में लावण्य ललक रहा था। लावण्य का सहचर लालित्य भी। लावण्य लजीला था। लालित्य सजीला। एक उभरते हुए यौवन का परिचायक था। दूसरा निखरती हुई निष्ठा का।

नारीमूर्ति के नयन निर्निमेष थे। दीर्घपक्ष्म नयन। और उन नयनों के कोर अश्रुकणों से चमक रहे थे। जैसे नीहारकण से लदी नीलोत्पल की नोंक। दूसरे क्षण नारीमूर्ति के अधरोष्ठ फड़फड़ाए। और उसका कलकण्ठ कूज उठा : "अरुण ! तुम हो !!"

और साथ ही वे अश्रुकण उसके कपोलों पर ढुलक पड़े। मनोद्वेग से आरक्त कपोलों पर। नारीमूर्ति का मुख एक महिमामयी मुस्कान से मुग्ध हो गया। उसकी पीठ पर प्रसारित केशराशि लहराई। और उसके एक स्कंध पर संचित होने के लिए उद्यत हो गई।

अरुण ने पूजाघर में पदार्पण किया। नारीमूर्ति भी अपना स्थान त्याग-कर आगे की ओर बढ़ आई। और वह केशराशि एक बार अन्तरिक्ष में लहरा कर दृष्टिपथ से विलुप्त हो गई।

अरुण ने कहा : "माफ कर दे, साधना ! मैंने तेरी पूजा के बीच में बाधा डाल दी।"

साधना अरुण के और भी निकट चली आई। उसकी देह का आय-तन अरुण की अपेक्षा कुछ छोटा था। वह अपना मुख ऊपर की ओर उठाती हुई, अपनी चितवन को चमत्कृत करके बोली : "बाधा तो बहुत बड़ी डाल दी !"

अरुण बोला : "मैं अपने लोभ से पार नहीं पा सका।"

"बड़े लोभी हो !"

"तेरे हाथ में यह माला देख कर मेरे लोभ का कूल-किनारा नहीं रह जाता।"

साधना अपने हाथ में लटकी माला को देखने लगी। फिर बोली—

"क्या है इस माला में ?"

अरुण ने उत्तर दिया : "जादू !"

साधना हँस पड़ी। अपना मुख अवनत करके। फिर वह मुख ऊपर उठा कर बोली : "अरुण ! तुम तो जानते हो कि तुम्हारा यह लोभ मेरे कितने काम की चीज है।"

अरुण ने उत्तर दिया : "जानता तो हूँ।"

"तो फिर।"

अरुण ने उत्तर नहीं दिया। साधना ने चौंकी की ओर संकेत करके कहा : "तो विलम्ब कैसा ? बैठो वहाँ।"

अरुण बोला : "किन्तु, साधना !......"

वह अपनी बात पूरी किए बिना ही रुक गया। साधना ने कहा---

"बोलो ! रुक क्यूँ गए ? कहो ना क्या कहना चाहते हो ?"

अरुण बोला : "अब मैं वहाँ बैठने योग्य नहीं हूँ।"

"क्यूँ ?"

"मुझे कुछ हो गया है।"

"क्या हो गया है ?"

"यह मैं नहीं जानता। किन्तु कुछ हो गया है अवश्य।"

"कुछ भी नहीं हुआ। तुम तो वही पुराने अरुण हो। साधना के श्यामसुन्दर।"

"मेरे अन्तर में......

"अन्तर की तो वे अन्तर्यामी ही जानते हैं।"

अरुण निरुत्तर-सा होकर मौन हो गया। साधना ने कहा : "पूजा में विलम्ब हो रहा है, अरुण ! चलो, चौकी पर बैठ जाओ। वैसे ही जैसे पहिले बैठा करते।"

अरुण चुपचाप चौकी पर बैठ गया। साधना ने अपनी फूलमाला उसके गले में पहिना दी। फिर उसने जानुपात करके अरुण के पादयुगल का अपने मस्तक से स्पर्श किया। और वह आसनस्थ होकर, हाथ जोड़ कर, आँखें मूंद कर गाने लगी :

"नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मनः ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ।।
ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च...

अरुण ने भी अपनी आँखें मूंद ली थीं । किन्तु वह अधिक समय तक उन्हें मूँदे नहीं रह पाया । वे आँखें खुल पड़ीं । और उन आँखों ने साधना को निहारा । साधना भाव-विभोर होकर गा रही थी । अश्रुमोचन करती हुई । वह संसार से दूर चली गई थी । दूर, बहुत दूर । वहाँ जाकर ही वह गा रही थी :

"कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे......

अरुण के मुख से एक दीर्घ निश्वास निकल गया । उसका अपना मानस चंचल था । और साधना का मानस ? महासागर-सा अगाध । अपरिसीम आकाश-सा अचंचल । अरुण के मानस की चंचलता उसके मुख पर छलक आई । मानो वह वहाँ से उठकर भाग जाना चाहता हो ।

किन्तु साधना ने उसकी यह अवस्था नहीं देखी । वह गाती रही । उसी प्रकार तल्लीन होकर । विह्वल होकर । अजस्र अश्रुधार से उसके कपोल-प्रान्त भीग गए । कण्ठ गद्गद् हो गया । अरुण ने देखा कि साधना के दोनों हाथों की रोमावलि अञ्चित है ।

स्तवन की अन्तिम पंक्ति पर पहुँच कर साधना ने फिर अपना मस्तक अरुण के चरणों में न्यस्त कर दिया । वह मधुर स्वर में गा रही थी :

"विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ।।"

अरुण हठात् उठ कर खड़ा हो गया । साधना ने किंचित् चौंक कर अपना मस्तक ऊपर उठा लिया । फिर वह, बैठी बैठी ही, ऊपर की ओर देख कर बोली :

"क्या हुआ, अरुण !"

अरुण ने अपने गले की माला उतारते हुए कहा : "अब मैं तेरी पूजा

के योग्य नहीं रहा, साधना !"

साधना ने झट से उठ कर अरुण का हाथ पकड़ लिया। वह बोली : "मेरी माला मत उतारो।"

अरुण ने कहा : "यह माला मेरे गले में पड़ कर दूषित हो गई।"

"क्यूं ?"

"मेरा मन कहता है।"

"मन की मत सुनो, अरुण ! मेरी सुनो।"

"तू क्या कहती है ?"

"ऐसे नहीं। मेरे पास बैठो। तब बतलाऊँगी।"

अरुण बैठ गया। साधना भी बैठ गई। बैठ कर उसने अरुण की आँखें टटोलीं। दीर्घाकार, प्रतनु अंगुलियों से। और वह कुछ-कुछ निराश-सी होकर बोली : "अरुण ! तुम्हारी आँखों में आज आँसू नहीं हैं !"

अरुण ने कहा : "नहीं !"

"तुम भावविह्वल नहीं हुए ?"

"नहीं।"

"तुम्हें रोमाञ्च भी नहीं हुआ ?"

"रोमाञ्च हुआ। किन्तु अन्य प्रकार का। वैसा नहीं जैसा पहले हुआ करता।"

"अन्य प्रकार का ?"

"हाँ, साधना ! भय था उस रोमाञ्च में।

"भय ? कैसा भय ?"

"मिथ्याचार का भय।"

"मिथ्याचार कौन कर रहा था ?"

"मैं ?"

"कौनसा मिथ्याचार ?"

"भगवान् बनने का मिथ्याचार।"

"शी......यह तुमको क्या हुआ, अरुण ! तुमको तो मैंने आज अपना नया आराध्य नहीं बनाया। तुम तो मेरे पुराने देवता हो। तुम्हारा

इतने दिन का अभ्यास क्या हुआ ? पहिले तो कभी तुमको ऐसी आशंका नहीं हुई थी ?"

"तब और बात थी, साधना ! अब और बात है।"

"अब क्या हो गया ?"

"तब मैं भगवान् का अस्तित्व स्वीकार करता था।"

"और अब ?"

"अब मुझको संशय है कि......अरुण का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही साधना ने अपनी हथेली उसके मुख पर रख दी। फिर वह भ्रू-कुञ्चित करके बोली : "छिः छिः ! ऐसा नहीं कहते, अरुण !"

एक क्षण के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। अरुण ने अपनी आँखें नीची कर ली थीं। और साधना एक-टक उसकी ओर देख रही थी। डब-डबाई आँखों से। साँस रोक कर।

तब साधना ने पूछा : "तुम क्या नास्तिक हो गए हो, अरुण !"

अरुण ने उत्तर दिया : "अभी हुआ तो नहीं हूँ। किन्तु हो जाऊँगा। शीघ्र ही। मेरा मन कहता है।"

"मन को समझाते क्यों नहीं ?"

"मन माने तब तो !"

"क्यूँ नहीं मानेगा ?"

"मेरी बुद्धि तर्क-वितर्क करने लगी है, साधना !"

"कैसा तर्क-वितर्क ?"

"बुद्धि कहती है कि भगवान् के अस्तित्व का कोई प्रमाण ही नहीं, भगवान् को मानना अन्धविश्वास है।"

"शास्त्र क्या अन्धविश्वास सिखलाते हैं ?"

"मैंने तो शास्त्र पढ़े नहीं।"

"तो अब पढ़कर देख लो।"

"बुद्धि उनके विरुद्ध भी विद्रोह कर रही है।"

साधना मौन हो गई। और अरुण भी कई क्षण तक कुछ नहीं कह पाया। फिर वह बोला : "मुझे माफ कर दे, साधना ! मैंने तेरा जी दुखा

दिया।"

साधना अरुण का हाथ पकड़ कर बोली : "मेरे जी की छोड़ो, अरुण !"

"तूने मुझको अपने से दूर भेज कर अच्छा नहीं किया।"

"दूर ! दूर कहाँ ? तुम तो सदा मेरे पास रहे हो। मैंने तो एक दिन भी तुमको दूर गया नहीं माना। पूजा के समय नित्यप्रति तुम मेरे सामने आ बैठते हो। मेरी माला पहिनते हो। मेरी पूजा स्वीकार करते हो... किन्तु..."

"किन्तु क्या, साधना !"

"आज ऐसा लग रहा है कि तुम मुझसे दूर जाते जा रहे हो।"

"तो तू मुझको अपने पास क्यों नहीं बुला लेती ? तेरे कहने की देर है, मैं शहर छोड़कर चला आऊँगा। तुरन्त।"

"उससे क्या होगा ?"

"तेरे पास रहूँगा। फिर तुझे भय नहीं लगेगा कि मैं तुमसे दूर जा रहा हूँ।"

"भगवान् को भूलकर तुम मेरे पास रहते हुए भी मुझसे दूर ही रह जाओगे। बहुत दूर रह जाओगे।"

"मैं चेष्टा करूँगा कि भगवान् पर अपना पहले जैसा विश्वास लौटा लाऊँ। तेरे लिए मैं अवश्य ऐसी चेष्टा करूँगा।"

"मेरे लिए ! मेरे लिए क्यों ?"

"तुझ को तो मैं भुला नहीं सकता।"

"और भगवान् को भुला सकते हो ?"

अरुण ने उत्तर नहीं दिया। उत्तर अपेक्षित भी नहीं था। अपनी अन्तिम बात के साथ-साथ साधना उठ कर खड़ी हो गई थी।

साधना घर के एक कोने में खड़ी हो कर अपने केश बाँधने लगी। अरुण उसकी ओर देखने लगा। म्लान-मुख-सा होकर। साधना ने उसकी ओर से अपनी पीठ फेर ली। वह अपने मुख पर उमड़ती हुई मुस्कान को छुपाना चाहती थी।

अरुण अपने स्थान से उठकर उसके समीप जा खड़ा हुआ। और दुखी-सा हो कर बोला : "तू मुझसे रूठ गई ना, साधना !"

साधना ने उत्तर नहीं दिया। अरुण ने कहा : "तब तो मैं आज ही शहर लौट जाऊँगा। अभी।"

साधना तब भी नहीं बोली। अरुण द्वार की ओर चल पड़ा। साधना ने कनखियों से उसकी ओर देखा। और वह अपना सारा संयम खो कर खिलखिला उठी। अरुण स्तम्भित-सा खड़ा हो गया।

साधना केश बाँधने के प्रयास में गर्दन को तिरछी करके उसकी ओर देख रही थी। उसके मुख पर अब भी मुस्कान फूटी पड़ रही थी। अरुण ने पूछा : "क्या बात है ?"

साधना आँखें नचा कर बोली : "शहर में जाने वाले साहब की सवारी देख रही हूँ।"

अरुण चिढ़ गया। वह बोला : "तू नहीं मानेगी ?"

साधना ने सिर हिला कर कहा : "मैंने तो कोई हठ की नहीं, महाशय !"

"मैं मार दूंगा, साधना !"

"सो तो तुम्हारा काम है। तुम पुरुष जो ठहरे।"

"और तू क्या है।"

"अबला।"

अरुण ने साधना के निकट जाकर उसका हाथ झटक दिया। साधना की केशराशि उसके हाथों से छूट कर खुल पड़ी। और साथ ही वह फिर खिलखिला कर हँसने लगी। तब वह अरुण का हाथ पकड़ कर बोली : "कितने दिन की छुट्टी आए हो, अरुण !"

अरुण ने उत्तर दिया : "छुट्टियाँ तो एक महीने की हैं।"

"अन्त तक यहीं ठहरोगे न ?"

"सोचकर तो यही आया था।"

"अब विचार बदल रहा है ?"

"हाँ।"

"सो क्यूँ ?"

"सोचता हूँ कि तू मुझको देख-देखकर कुढ़ेगी। इससे तो यही अच्छा है कि मैं शीघ्र ही यहाँ से चला जाऊँ।"

"मैं क्यों कुढ़ने लगी?"

"अभी कुढ़ रही थी ना।"

"अभी तो मैं हँस रही थी। कुढ़ तो तुम रहे थे।"

"और उसके पहले?"

"हाँ, तो तुमने बात ही ऐसी कह दी।"

"मैं तो बार-बार वैसी ही बातें कहूँगा।"

साधना ने अरुण की बात का उत्तर नहीं दिया। वह उसकी ओर देखकर मुस्कराने लगी। अरुण बोला: "तू मुझसे शास्त्रार्थ करेगी?"

साधना ने कहा: "मैं क्यों करने लगी शास्त्रार्थ! शास्त्रार्थ करना है तो जाकर समाजियों से करो।"

"तो तू मेरी बातें चुपचाप सुन लेगी।"

"हाँ, सुन लूँगी।"

"कुछ कहेगी नहीं?"

"मेरे पास कहने को है ही क्या?"

"बुरी नहीं लगेंगी मेरी बातें?"

"तुम्हारे मुख से निकली हुई कोई भी बात मुझको बुरी नहीं लगती।"

"मेरे मुख में ऐसा क्या है?"

"अब यह बात मैं कैसे बतलाऊँ, अरुण! और तुमने यह बात पूछी भी कैसे? तुम क्या कुछ भी नहीं जानते?"

"तब तो तू भी शीघ्र ही मेरे जैसी नास्तिक हो जाएगी।"

"या तुम आस्तिक हो जाओगे।"

"बिना शास्त्रार्थ के ही।"

"हाँ, बिना शास्त्रार्थ के ही। मेरे मुख से एक शब्द भी निकले बिना ही।"

"ऐसी तुझ में क्या करामात है?"

"कुछ है करामात! तुमको वह भेद क्यूँ बतलाऊँ?"

अरुण चुप हो गया। वह फिर उसी चौकी पर जा बैठा। साधना अपने केश बाँध रही थी। अरुण उसको देखता रहा।

केश बाँधकर साधना ने अपना सिर साड़ी के आँचल से ढक लिया। सहसा अरुण की आँखें उस साड़ी पर टिक कर रह गईं। श्वेत रंग की साड़ी थी। वही लाल पाड़ वाली। किन्तु साफ धुली हुई। साड़ी में अनेक पेबन्द देखकर अरुण का जी भर आया। वह बोला : "साधना ! तेरे लिए नई साड़ी लाया हूँ। चाचीजी के लिए भी। साड़ी लेने से इन्कार तो नहीं करेगी ?"

साधना ने उत्तर नहीं दिया। अरुण बोला : "तू मुझे कोई चीज देती है तो मैं झट ले लेता हूँ। और तू है कि मेरे हाथ की साड़ी भी आज तक नहीं ली। फिर भी मैं तो ले ही आया। अब की बार ले ले, साधना !"

साधना ने बात बदलने के लिए पूछा : "चाय पीओगे ना ?"

अरुण ने उत्तर दिया : "तू साड़ी लेना स्वीकार करेगी तो जरूर पीऊँगा।"

"नहीं तो ?"

"नहीं पीऊँगा।"

"किन्तु चाय तो तुमने न जाने कितनी बार पीई है। अभी तक तो तुमने कभी ऐसी हठ नहीं की।"

"अब मैं हठ करूँगा।"

"अब क्या हो गया ?"

"अब मैं सयाना हो गया हूँ।"

"पहिले क्या तुम भोंदू थे ?"

"भोंदू ही तो था।"

"सो किस प्रकार ?"

"अब यह बात फिर कभी बतलाऊँगा।"

"मैं बतलाऊँ ?"

"बतलाओ।"

"पहिले तुम भगवान् को मानते थे। इसलिए तुम भोंदू थे। हैं ना ?"

साधना खिलखिलाकर हँसने लगी। किन्तु अरुण कुछ अप्रितभ-सा हो गया। तब साधना ने कहा : "चलो, चाय पी लो। जेब में पैसे हों तो देते जाना। नहीं तो घर जाकर कन्हैया के हाथ भिजवा देना। एक प्याला चाय के लिए साड़ी काहे गँवाते हो, लाला !"

अरुण ने बिगड़कर कहा : "साधना ! तू फिर मेरा मजाक बना रही है !!"

साधना भय का भाव दिखलाकर बोली : "ना, बाबा ! किसकी हिम्मत है जो तुम्हारा मजाक बनाए ! मैं तो मोलभाव कर रही थी। तुम शहर के आदमी ठहरे। शहर के लोग मोलभाव करना पसन्द करते हैं।"

अरुण उठकर साधना की ओर लपका। और साधना एक कुलाँच में पूजाघर का द्वार पार कर गई। अरुण ने देखा कि साधना का केशभार फिर से विमुक्त होकर आनितम्ब आलम्बित हो चला है।

: २ :

अरुण पूजाघर से निकलकर आंगन में आ गया। साधना अपनी माताजी के पास बैठी थी। खटिया पर। साग चूँटने का उपक्रम करती हुई। अरुण भी उसी स्थान पर जा पहुँचा।

सरस्वती ने सिर ऊपर उठाकर अरुण को देखा। और फिर वे विस्मित होकर बोलीं : "अरे बेटा अरुण ! तू कब आया ?"

अरुण ने हाथ जोड़कर कहा : "नमस्ते, चाचीजी !"

सरस्वती का मुख अरुण को देखकर खिल उठा था। वे स्नेह-सने स्वर में बोली : "आ, बेटा ! बैठ तो मेरे पास ! देखूँ तो मेरा अरुण अब की बार कैसा लग रहा है।"

अरुण भी खटिया पर बैठ गया। सरस्वती ने उसका मुख अपने दोनों हाथों में लेकर निर्निमेष नयनों से निहारा। अद्भुत था उन हाथों का स्पर्श। अरुण आपाद-मस्तक विभोर हो गया। हाथों की हथेलियाँ कर्कश थीं। घर का काम करते-करते कर्कश। किन्तु अरुण के कपोलों का स्पर्श उस कर्कशता ने नहीं किया। उसके कपोलों को सरस्वती के हृदय ने छूआ था। नवनीत से कोमल हृदय ने। वात्सल्य से छलछलाते हुए हृदय ने।

सरस्वती ने पूछा : "कब आया, बेटा !"

अरुण ने उत्तर दिया : "कल रात को।"

"आठ बजे की गाड़ी से ?"

"हाँ, उसी से आया था। किन्तु घर पर मैं बारह बजे पहुँचा।"

"यह मरी गाड़ी रोजाना लेट हो जाती है।"

"नहीं, चाचीजी ! गाड़ी तो ठीक वक्त पर ही आई थी। पर मैंने स्टेशन से कोई सवारी नहीं ली। पैदल चलकर आया। इसलिए देर हो गई।"

"पाँच कोस पैदल !!"

"पूनो का पूरा चाँद खिला था। सोचा, चाँदनी में पैदल ही चलूँगा।"

"अरे मेरे बावले बेटे ! चाँदनी में चलना था तो शहर में चल लिया होता। देहात के रास्तों पर आधी-पिछली रात...

"क्या डर है, चाचीजी ! मेरे पास भला कौन-सी पूँजी थी ? अकेला जी ही तो था।"

"तू नहीं समझता, अरुण ! तू धनी बाप का बेटा है। जने कौन क्या समझकर पीछे हो लेता। आजकल का ज़माना भी तो अच्छा नहीं है।"

"पीछे हो लेता तो क्या ले लेता, चाचीजी !"

"मार-छेड़ तो कर देता।"

"और मैं क्या मिट्टी का माधो हूँ ? जैसे दो हाथ उसके वैसे ही दो हाथ मेरे।"

साधना बीच में बोल उठी : "हाथ चलते हैं या नहीं, मैं नहीं जानती। ज़बान तो खूब चलती है।"

अरुण ने साधना की ओर देखा। साधना ने अरुण की ओर। साधना की आँखों में शरारत भरी थी। अरुण का जी चाहा कि उसकी नाक पकड़ कर मरोड़ दे। किन्तु सरस्वती के सामने उसे संयम धारण करना पड़ा।

अरुण ने पूछा : "चाचाजी कहाँ गए ?"

सरस्वती ने उत्तर दिया : "नारायणपुर चले गए। आज भोर होने

से पहले। बस अब वहाँ पहुँचा ही चाहते हैं।"

"नारायणपुर ? वहाँ क्या कोई...

"वहाँ का वह सेठ है ना, बेटा ! वही जो कलकत्ते जाकर मायाधारी हो गया। सुना है वह गाँव में पाठशाला खोलना चाहता है। उनने सोचा शायद उनकी ही कुछ ठीक बैठ जाए।"

अरुण मौन रहा। किन्तु उसके मुख का भाव कुछ बदल-सा गया। मानो वह इस बात को सुनने के लिए तैयार नहीं था। मानो वह कुछ और सुनना चाहता था।

सरस्वती ने कहा : "अच्छा हुआ, बेटा ! तू पूजा के वक्त आ गया। तुम दोनों ने बहुत दिन में आज एक साथ पूजा की है।"

साधना बोली : "कहाँ ! पूजा के वक्त कहाँ, माताजी ! ये तो बीच में टपक पड़े। और मेरी सारी पूजा बेकार कर दी।"

"पूजा क्यूँ बेकार होने लगी ! पूजा तो तेरी सफल हो गई, नन्हीं !"

"इनसे इतना भी नहीं हुआ कि कुछ देर बाहर रुक जाते। धड़ाधड़ पूजाघर में घुस गए। बिना नहाए-धोए ! सब कुछ भ्रष्ट कर दिया ! !"

अरुण बोला : "वाह ! नहा के आया हूँ।"

साधना ने कहा : "तभी तो इतने सुन्दर लग रहे हो, लाला ! शीशा लाऊँ ? अपना मुँह तो देख लो।"

सरस्वती ने साधना से कहा : "तेरी ज़बान बहुत निकल गई, सद्दो ! ये तो नहीं कि जाकर अरुण के लिए चाय बना दे। उल्टा उससे झगड़ रही है।"

साधना ने अरुण से पूछा : "चाय पीओगे ?"

अरुण ने कहा : "नहीं, चाय नहीं चाहिए।"

सरस्वती ने पूछा : "क्यूँ, बेटा ! चाय क्यूँ नहीं पीएगा ? तूने तो सुबह से कुछ खाया-पीया भी नहीं होगा ?"

साधना बोली : "कौन जाने, माताजी ! अब इनके लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही रहे हैं। खा-पीकर ही पूजा करने आ पहुँचे हों !"

अरुण ने आँखें निकालकर कहा : "हाँ, खा-पीकर आया हूँ। खूब

खा-पीकर आया हूँ। तुझे क्या ?"

"तो चाय क्यूँ माँग रहे हो ?"

सरस्वती ने साधना को डाँटा : "कैसी नकटी लड़की है ! इसने कहाँ माँगी है चाय ? यह तो कभी पानी भी नहीं माँगता। मेरा बेटा बहुत शरमाऊ है। तेरे जैसा थोड़े ही है। काम-धाम के नाम पर कुछ नहीं। बैठी-बैठी ज़बान चला रही है।"

साधना उठने लगी। अरुण ने सरस्वती से कहा : "नहीं, चाचीजी ! मैं चाय नहीं पीऊँगा।"

सरस्वती ने पूछा : "क्यूँ ?"

"चाय पीने से दोपहर की भूख भाग जाती है।"

"तू तो बेटा शहर का शहराती हो गया। जरा सी चाय से भूख भागने लगी तेरी ?"

"कहाँ, चाचीजी ! शहर में तो सबके सब मुझको जाट कहते हैं।"

साधना बोली : "तुम हो ही जाट !"

सरस्वती ने चौंक कर अरुण की ओर देखा। फिर वे बोलीं: "जाट कहते हैं तुझे ! अरे तू उनको बतला क्यों नहीं देता कि तू बाम्हन है ? गौड़ ब्राह्मण।"

अरुण ने उत्तर दिया : "क्या होगा बतलाकर ? शहर के लोग क्या जाट और बाम्हन का भेद जानते हैं ?"

"सो तो है। सुना, शहर में गधा-घोड़ा सब बराबर हैं। धरम-करम कुछ भी नहीं जानते शहर वाले।"

"शहर जाकर मेरी तो जात चली गई, चाचीजी !"

"तू गाँव में ही रहे जाता तो अच्छा रहता, अरुण ! यहाँ अब भी कुछ धरम-करम बचा हुआ है।"

"मैं क्या यहाँ से जाना चाहता था ! किन्तु करता क्या ? यह साधना की बच्ची नहीं मानी। मुझे गाँव से निकाल कर ही पानी पीया इसने।"

साधना बोली : "मेरी बला से ! जब चाहो गाँव में लौट आओ। मैंने तो तुम्हारे ही भले की बात कही थी।"

सरस्वती ने कहा : "सद्दो ठीक ही कहती है, बेटा ! अंग्रजी पढ़े बिना आजकल आदमी की कीमत ही नहीं होती ।"

अरुण बोला : "अंग्रेजी तो मैं पढ़ गया था । दस जमात । और क्या जरूरत थी ?"

साधना ने जीभ निकाल कर अरुण की चीढ़ उतारी : "द्यत दमात ! दस जमात पढ़े हुए तो यहाँ गली-गली में फिर रहे हैं । फौज की फौज ।"

सरस्वती ने कहाँ : "यह भी ठीक है, अरुण ! कॉलिज की पढ़ाई किए बिना काम नहीं बनता । ये भी यदि कॉलिज में पढ़ लेते तो...

सरस्वती ने अपना वाक्य पूरा नहीं किया । उनके स्वर में जने कैसा एक विषाद सा भर गया । न जाने कैसे एक विवशता सी । साधना तुरन्त उठकर रसोईघर की ओर चली गई । सरस्वती ने उसको रोका नहीं । न उन्होंने अरुण से ही और कुछ कहा ।

अरुण भी मौन बैठा रहा । सिर घुमा-घुमाकर आँगन के चारों ओर एक अन्यमनस्क-सा दृष्टिपात करता हुआ । मानो वह कुछ खोज रहा हो । किसी परिवर्तन का कोई लक्षण । किन्तु उसे किसी ओर भी कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया ।

यह तो वही घर था । वही पुराना घर । कच्ची मिट्टी का बना हुआ । वैसा ही जैसा वह एक वर्ष पूर्व आया तब छोड़कर गया था । वैसा ही जैसा उसने आठ-नौ वर्ष पहिले देखा था । वह प्रथम बार जीतपुर में आया, तब ।

वही आँगन । आँगन के बीचों-बीच वही ढाई हाथ ऊँचा गमला । पक्की ईंटों पर चूना किया हुआ । गमले में वही तुलसी का हरा-भरा पौदा । पौदे के नीचे रक्खा हुआ वही शालग्राम । लाल सूत के डोरे में लिपटा हुआ ।

आँगन के पिछवाड़े पर के दो घर भी वही थे । नीची-नीची छतों वाले घर । घरों के आगे संकरा-सा दालान भी वही था । छप्पर से छाया हुआ दालान । छप्पर पर फैली हुई बेल भी वही थी । और बेल में फूले हुए फूल भी वैसे ही ।

आँगन के बाई ओर बना हुआ छोटा-सा रसोईघर भी वही था। धूएँ से काले पड़े हुए दरवाजे वाला रसोईघर। और रसोईघर के बराबर में पूजाघर भी वैसा ही था। पूजाघर के आगे वाला छोटा-सा छप्पर भी वैसा ही।

आँगन के दाहिने छोर पर बना हुआ ठान भी वही था। बिना दरवाजे का खुला हुआ ठान। ठान के भीतर वही लम्बी-सी खोर। और खोर के आगे वही एक ऊँचा-सा खूंटा। गैया के चाटने से चिकना पड़ा हुआ खूँटा।

अरुण की आँखें ठान पर आकर थम गई। वह प्रथम बार जीतपुर में आया तब उस ठान में गैया बँधी रहती थी। नरम-नरम, सफेद-सफेद रोओं वाली गैया। अरुण उस के गले से लिपट जाया करता। साधना उसका सिर सहलाया करती। छोटी-छोटी हथेलियों से। गैया साधना का गाल चाट लेती थी। और साधना लोट-पोट हो जाया करती। गुदगुदी के मारे।

अब वह ठान रीता था। कई बरस से रीता था। अरुण शहर में जाने लगा उसके बहुत पहिले से रीता था। अरुण ने अनेक बार आशा की थी कि वह ठान फिर से भर जायगा। एक-न-एक दिन। किन्तु वह दिन तो नहीं आया। आज तक भी नहीं आया। क्या कभी आएगा वह दिन? कौन जाने!

7085

अरुण ने अपनी आँखें ठान पर से हटा लीं। एक बार फिर चारों ओर घूम गई वे आँखें। आँगन की दीवार भी तो जर्जर हो गई थी। गली के साथ-साथ लगने वाली दीवार। वह गिर पड़ी तो? आँगन उघाड़ा हो जाएगा। फिर से क्या बन सकेगी वह दीवार? कौन जाने!

और आँगन का वह दरवाजा। उसकी तो चौकठ हिल रही थी। अरुण आज आँगन में आने लगा तो उसका हाथ लग गया था उस चौकठ से। मिट्टी आ गिरी थी अरुण के ऊपर। दरवाजे के किवाड़ भी टूटना चाहते थे। आँधी-पानी में कैसे ठहरते होंगे ये किवाड़? भड़भड़ाते होंगे? क्या इनकी जगह नयी जोड़ी नहीं चढ़ाई जा सकती? कहाँ मिलेगी नये किवाड़ों

की जोड़ी ? कौन जाने !

अरुण की आँखें उस ओर से भी लौट आई। निराश-सी होकर। निर्निमेष रहकर। और वे सरस्वती पर टिक गईं।

ये भी वही थीं। सरस्वती चाची। इनकी आयु शायद कुछ बढ़ गई थी। वह प्रथमबार जीतपुर में आया तब ये चालीस बरस की थीं। अब शायद पचास के समीप पहुँच गई होंगी। किन्तु रहीं ये वैसी की वैसी।

सिर के बाल अभी भी काले थे। सरस्वती चाची के सिर के बाल। सारे के सारे बाल काले थे। घने, घुँघराले-से बाल। वैसे ही अस्त-व्यस्त। वैसी ही किंचित् मटमैले।

मुख में दाँत भी पूरे थे। अभी-अभी तो देखे थे अरुण ने वे दाँत। सुन्दर, साँवले मुख की शोभा बढ़ाने वाले दाँत। किन्तु मुख तो म्लान था। विषाद की छाया से म्लान था। सरस्वती चाची हँसती थीं तब भी वह छाया दूर नहीं होती थी। एक क्षण के लिए भी नहीं। मानो सरस्वती चाची के साथ-साथ जन्म हुआ हो उसका। एक ही माँ के पेट से।

सरस्वती चाची की साड़ी भी वही थी। वही नहीं तो वैसी ही। गहरे चॉकलेट रंग की साड़ी। धुल-धुलकर उस साड़ी का रंग कुछ हलका पड़ने लगा था। और वह जगह-जगह से सिली हुई थी। हाथ से सिली हुई। साधना ने की होगी यह सिलाई। अपनी साड़ी की सिलाई भी। उसकी साड़ी भी...

अरुण ने सरस्वती को सम्बोधित किया : "चाचीजी ! आप मेरी एक बात मानेंगी ?"

सरस्वती ने जैसे नींद से जाग कर कहा : "कह, बेटा ! कह क्या बात है ?"

"आप मानें तो कहूँ ?"

"तेरी बात क्यों नहीं मानूँगी ? जरूर मानूँगी।"

"मैं दिल्ली से दो साड़ियाँ लाया हूँ। एक आपके लिए, और एक साधना के लिए। अबकी बार ले लीजिए।"

"साधना से पूछ ले, बेटा !"

"वह तो ऐसी हठीली है, ऐसी हठीली है...

साधना मानो कान लगाए सुन रही थी। वह रसोईघर के द्वार पर आकर बोली : "मेरी चुगली क्यों कर रहे हो, जी!"

अरुण उसकी ओर देखकर बोला :

"चुगली कहाँ कर रहा हूँ? मैं तो तेरे मुँह पर कहता हूँ।"

साधना ने निकट आकर कहा : "क्या कहते हो?"

"कहता हूँ कि तू हठीली है। जैसी नीली, वैसी ही हठीली।"

"तुम तो गोरे हो! फिर तुम क्यों हठ कर रहे हो?"

"मैं कौनसा हठ कर रहा हूँ?"

"साड़ी हम से पूछ कर लाए हो?"

"तुम से कोई क्या पूछे?"

"मेरी तो सारे गाँव में पूछ है। तुम्हारे कहने से क्या हो गया?"

अरुण चुप होकर सरस्वती की ओर देखने लगा। सरस्वती ने साधना की ओर देखकर कहा : "बेटी! यह तीसरी या चौथी बार साड़ी लाया है।"

साधना बोली : "कोई सौ बार लाया करे! मुझे मतलब नहीं।"

अरुण ने पूछा : "आखिर बात क्या है, साधना!"

साधना ने उत्तर दिया : "मैं पूछती हूँ, तुम किन की कमाई की साड़ी लाए हो?"

"कमाई?"

"तुम तो कुछ कमाते-धमाते नहीं। खाली खरच ही करना जानते हो।"

"किसी और का खरच करता हूँ? अपने बाप का पैसा है।"

"करो, खूब खरच करो। किन्तु मुझ पर क्यों? माताजी पर क्यों? तुम्हारे बाप का पैसा हमारे बाप का पैसा तो नहीं है।"

अरुण की समझ में नहीं आया कि क्या कहे। साधना कहने लगी : "जिस दिन तुम कुछ कमाकर लाओ उस दिन कहना, लालाजी! उस दिन मैं सोचकर देखूँगी।"

अरुण बोला : "सोचकर क्या देखेगी। उस दिन कोई नया बहाना

बना देगी ।"

"बहाने बनाना हम गाँव वालों को नहीं आता । हम तो सीधी बात कहते हैं । सीधी बात कहना, सुखी रहना । तुम शहर वालों की तरह...

अरुण ने सरस्वती से कहा : "चाचीजी ! इस छोकरी को चुप कर लीजिए आप । आज जने इसको क्या हो गया है !"

साधना ने कहा : "और तुमने जने क्या भाँग पी रक्खी है ! सुबह-ही-सुबह पों-पों ।"

सरस्वती ने कहा : "अरुण ! आज साँझ का खाना इस घर में खाना, बेटा !"

अरुण बोला : "मैं तो खा लूंगा । पर यह साधना की बच्ची क्या मुझको खाने देगी ?"

साधना ने कहा : "क्यों नहीं खाने दूंगी ? पैसे लेकर आओगे तो खूब खाने दूंगी ।"

सरस्वती चौंककर बोली : "पैसे !"

साधना ने कहा : "यह हमारी आपस की बात है, माताजी ! आपकी समझ में नहीं आएगी ।"

सरस्वती उठ खड़ी हुई और घर के भीतर जाती हुई कह गई : "तो तुम दोनों ही आपस में सुलझ लो । मेरा काम पड़ा है ।"

सरस्वती घर के भीतर चली गई । साधना ने अरुण से पूछा : "क्या-क्या खाओगे, अरुण ! मेरा मतलब, साँझ के खाने में ?"

अरुण गुर्रा उठा : "तेरा भेजा !"

"शहर में जाकर यही सीखा है ?"

अरुण फिर निरुत्तर हो गया । साधना खिलखिलाकर हँस पड़ी । फिर वह अरुण के पास बैठकर बोली : "तुम तो नाराज़ हो गए, अरुण ! अच्छा नहीं लगा तो मैं फिर ठट्ठा नहीं करूँगी । गाँव के लोग तो ठट्ठा किया ही करते हैं ।"

अरुण ने खड़े होकर साधना की नाक मरोड़ दी । साधना बोली : "अरुण ! सुबह जरा वक्त से आया करो । भागवत सुनाऊँगी । बड़ा रस

आता है।"

अरुण बोला : "सो तो आज देख लिया। कल ठीक वक्त पर आऊँगा।"

"दिल्ली में तो भागवत कहाँ होती होगी ?"

"होती है, खूब होती है। किन्तु अन्य प्रकार की।"

"अन्य प्रकार की ? और कौन-सी भागवत है ?"

"एक है। तू नहीं जानती, साधना !"

"बतलाओ भी।"

"तो ले सुन।"

अरुण ने अपने मुख का भाव विक्षिप्त बना लिया। बालों की दो लटें माथे पर बिखरा लीं। फिर वह अपने दोनों हाथ ढीले छोड़कर गा उठा :

"इस दिल के टुकड़े हजार हुए,
कोई यहाँ गिरा, कोई वहाँ गिरा...
कोई यहाँ गिरा, कोई...

साधना ने सिटपिटा कर कहा : "धत् ! यह क्या गर्दभ-राग सुनाने लगे !!"

अरुण अपने मुख पर एक अँगुली रखकर बोला : "हिश ! यह गर्दभ-राग नहीं है, साधना ! टुवैन्टिअथ सैन्चरी के मास्टर म्यूज़िक को तू गर्दभ-राग कहती है ! गाँव की गँवार कहीं की !!"

साधना ने भ्रूकुञ्चित करके कहा : ऊँ-ऊँ-हूँ ..ऊँ ! बड़े आए शहर के शहराती। ज़रा शीशे में अपना मुँह तो देख आए होते !!"

अरुण हँसकर बोला : "शीशे में अपना मुँह देखकर आया था तभी तो आज ऐसी बीती मुझ पर ! किसी भले आदमी का मुँह देखा होता तो ..

"तो क्या होता ?"

"चाय न पीने को मिलती।"

साधना ने उत्तर नहीं दिया। अरुण ने पूछा : "सांझ को मेरा खाना तो खटाई में नहीं पड़ेगा, साधना ! तू अपने मुँह से मुझे निमन्त्रण

दे दे !"

साधना मुड़कर लौट पड़ी। वह जाती-जाती कह गई : "मेरी बला से !"

किन्तु उसके स्वर में शत-सहस्र निमन्त्रण निगूढ़ थे ! अरुण एकटक उसकी ओर देखता रहा। साधना के पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। उसकी चाल सूचना दे रही थी कि आज वह अत्यधिक आह्लादित है।

: ३ :

अरुण जीतपुर का भानजा था। उसके अपने गाँव में केवल चार जमात का स्कूल था। इसलिए वह पाँचवीं जमात में भरती होने के लिए जीतपुर चला आया था। यहाँ पर हाई-स्कूल चल रहा था। कई साल से। गाँव के लोगों ने आपस में और आसपास की देहात से चंदा करके बनाया था वह स्कूल। सारी देहात के लड़के यहाँ पढ़ने आते थे। अंग्रेजी पढ़ने।

अरुण का अपना गाँव छोटा था। किन्तु उसका परिवार बड़ा था। जात के ब्राह्मण थे वे लोग। किन्तु करते थे खेती-बाड़ी। परिवार के पास कई-सौ बीघे धरती थी। गाय, भैंस, घोड़ी, रहड़ू, हरक्यूलीस की साइकिल—सभी कुछ था घर में। नहर का इलाका होने के कारण फसल अच्छी उठती थी। गेहूँ की फसल। ईख की भी। परिवार के लोग अपने-आप कोल्हू चलाकर गुड़-शक्कर तैयार कर लेते थे। ढेर-का-ढेर। कई कोठे भर जाते थे। और कोठे में रखी लोहे की तिजौरी भी भर जाती थी।

अरुण सारे परिवार का लाड़ला लड़का था। उसका जन्म हुआ तब से परिवार में खुशहाली आई थी। पहिले परिवार की अवस्था ऐसी अच्छी नहीं थी। इसलिए सब का विश्वास था कि सारा परिवार अरुण के भाग्य से पल रहा है। अरुण की किसी बात को भी नहीं टाला जाता था। वह माँगता था एक रुपया। परिवार वाले उसे देते थे पाँच।

और मामा के परिवार में भी अरुण का बहुत आदर था। खूब खाता-पीता हुआ परिवार था वह। किन्तु वैसा खुशहाल नहीं जैसा कि अरुण का अपना परिवार। अरुण को सब लोग बड़े घर का बेटा मानते थे।

नाना-नानी जीवित थे। और माँ मर चुकी थी। इसलिए भी सब लोग अरुण का विशेष ध्यान रखते थे। बिना माँ का बेटा कहीं मन मैला न कर बैठे।

पाँचवीं कक्षा से लेकर मैट्रिक पास करने तक अरुण जीतपुर में ही रहा। स्कूल की छुट्टियाँ होती थीं तो वह एक बार अपने गांव ज़रूर जाता था। किन्तु दो-चार दिन के लिए ही। जल्दी ही लौट आता था। वहाँ उसका जी नहीं लगता था।

उसका जी तो जीतपुर में ही लगता था। जीतपुर में उसकी एक साथिन बन गई थी। साधना। पण्डित गोपालकृष्ण शास्त्री की इकलौती लड़की। अरुण जीतपुर में आया तब से ही उसके साथ खेला था। बहुत छोटी उम्र में ही उन दोनों में बहुत गाढ़ा मेल हो गया था। अरुण अवकाश पाते ही शास्त्रीजी के घर जा पहुँचता था। और शास्त्री जी तथा उनकी स्त्री, सरस्वती, उससे बहुत स्नेह करते थे।

अरुण का नाम भी शास्त्रीजी ने ही रखा था। उसका घर का नाम तो रणसिंह था। शास्त्रीजी को वह नाम पसन्द नहीं आया। उन्होंने उसका नाम अरुण रख दिया। अरुण प्रकाश शर्मा। अरुण भी अपना परिचय इसी नाम से देने लगा। अपनी किताब-कापियों पर भी वह यही नाम लिखता था। किन्तु मामा के घर में, गली-मुहल्ले में, तथा स्कूल में सब उसको रणसिंह ही कहते थे। केवल शास्त्रीजी के घर में ही वह अरुण कहलाता था।

शास्त्रीजी का कुटुम्ब एक समय बहुत बड़ा था। उनके पूर्वज श्यामसुन्दर मिश्र के वंशज परिवारों की संख्या जीतपुर में ही पन्द्रह-बीस थी। कुछ परिवार आस-पास के गाँवों में भी जा बसे थे। उस देहात का बहुत ही पुराना एवं प्रसिद्ध पण्डित-वंश था वह। वेदपाठी पण्डित-वंश। इस वंश में खेती-बाड़ी करना निषिद्ध था। पुरुष पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरोहिताई का काम करते आए थे। लड़के का यज्ञोपवीत होते ही उसको काशी भेज दिया जाता था। और वहाँ से वह संस्कृत का विद्वान बनकर ही लौटता था।

किन्तु विधाता का कुछ ऐसा विधान बना कि धीरे-धीरे इस वंश के अधिकतर परिवार पुत्रहीन हो गए। जीतपुर में केवल एक ही घर बच गया। पण्डित महीधर मिश्र का। उनके बड़ी आयु में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गोपालकृष्ण। मिश्रजी ने उसका यज्ञोपवीत होते ही उसको काशी भेज दिया।

इधर इस देहात में एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ। एक ओर तो आर्य-समाज का सुधार आन्दोलन जो अहिंदु धर्मों पर प्रबल प्रहार करने के साथ-साथ सनातन धर्म के अनुयाइयों को भी शास्त्रार्थ के लिए ललकारता रहता था। और दूसरी ओर जातिवाद का जहर जिसने अचिर में ही ग्रामीण समाज को जर्जर कर दिया। गोपालकृष्ण काशी से शास्त्री बनकर लौटे तब तक वह बवण्डर अपना काम कर चुका था। एक समय का पूजा-प्राप्त पण्डित-परिवार अब अपमानित एवं तिरस्कृत था।

महीधर मिश्र धुरन्धर विद्वान् थे। वे अपना अधिक समय संस्कृत के ग्रन्थों का अवलोकन करने में ही व्यतीत करते थे। उन्होंने योगवाशिष्ठ पर एक भाष्य भी लिखा था। संस्कृत में ही। गाँव के लोग तो उनको नहीं समझ पाते थे। किन्तु दूर-दूर के पण्डित बहुधा उनसे शिक्षा ग्रहण करने तथा तत्त्वचर्चा करने आते रहते थे। मिश्रजी के मुख से सरस्वती की सनातन सुधाधार बहती थी।

और जीतपुर में मिश्रजी का बहुत मान था। वे गाँव की जिस गली से निकलते थे वहीं पर बड़े-बूढ़े लोग भी उठकर खड़े होजाते थे। मिश्रजी को सब लोग पालागा कहते थे। और तीज-त्यौहार तथा ब्याह-शादी के अवसर पर मिश्रजी को अच्छी दान-दक्षिणा भी मिल जाती थी। विशेष-कर वणिज-व्यापार करने वाले बनिया परिवारों से। जीतपुर में उस समय बनियों के दो सौ परिवार थे। अधिकतर परिवार व्यापार से आढ्य थे।

तब एक दिन अकस्मात् आर्यसमाज के कुछ प्रचारक जीतपुर में आ धमके। ढोलक और हारमोनियम लेकर। मुख्य-प्रचारक की मूर्धा पर बहुत बड़ी शिखा फरफरा रही थी। कण्ठ पर मोटा-सा जनेऊ वेष्टित था। गाँव की चौपाल में उनका व्याख्यान हुआ। भजन भी गाए गये। गाने वालों

का गला बहुत अच्छा था। विलम्बित लय में पंचम की तानें लेने वाला गला। पहले दिन जिसने भी उनके व्याख्यान और भजन सुने वह दूसरे दिन सारे पास-पड़ौस को साथ ले आया।

गाँव में मुसलमान तो दो-चार घर थे। प्रचारक ने उनको दो-चार जली-कटी सुना दीं। और फिर वे गाँव में भरी हुई "पोप लीला" पर पिल पड़े। व्याख्यान में व्यंग बहुत था। किन्तु हास्य-रस भी। इसलिए व्यंग अपना काम कर गया। पुराणों की अलौकिक कथाओं को लेकर प्रचारक महाशय ने जो छीछा-लेदर की उसे सुनकर ग्रामीण जनता हँसी से लोट-पोट हो गई। और उस हँसी ने गाँव के परम्परा-गत श्रद्धा विश्वासों की होली जला डाली।

अगले दिन गाँव के कुछ गम्भीर लोग मिश्रजी के पास पहुँचे। प्रश्न पूछने के लिए। विचित्र प्रकार के थे वे प्रश्न। ऐसे प्रश्न जो उन्होंने पहिले कभी नहीं पूछे थे। मिश्रजी पहिले तो शान्त रहकर शास्त्रानुकूल उत्तर देते रहे। किन्तु प्रश्नकर्ता तो शास्त्रों के प्रति ही संशय प्रकट करने लगे। तब मिश्रजी को क्रोध आ गया। शास्त्र के प्रति संशय प्रकट करने वाले उनकी दृष्टि से महान म्लेच्छ थे।

तब एक युवक ने मिश्रजी से मुकाबला रोप लिया। वह बोला: "ब्राह्मणों ने भोले-भाले लोगों को ठगने-खाने के लिए मनगढन्त शास्त्र बना लिए हैं। पुराण तो पाखण्ड की ही पुष्टि करते हैं। हिन्दुओं के असली शास्त्र तो वेद हैं। पुराण-वुराण सब फिजूल की पोंगापंथी का प्रचार करते हैं।"

मिश्रजी ने अपना स्वर प्रखर करके उत्तर दिया: "जो वेद में है, सो पुराण में है। जो पुराण में है, सो वेद में है। और तू कौनसा वेदपाठी है जो ऐसी बातें बना रहा है?"

युवक उस समय तो निरुत्तर हो गया। किन्तु अगले दिन वह मिश्रजी के पास शास्त्रार्थ का निमन्त्रण लेकर आ पहुँचा। वह बोला: "मिश्रजी! यदि आप शास्त्रार्थ में महाशयजी को हरा दें तो मैं सारी उमर आप के पाँव दबाऊँगा। मैं क्या, सारा गाँव, सारी देहात आप के चरण धो-धोकर

पीएगी।"

मिश्रजी शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हो गए। और यह समाचार दावाग्नि की नाईं सारी देहात में दौड़ गया। शास्त्रार्थ के दिन गाँव की बड़ी चौपाल में और चौपाल के आगे लम्बे-चौड़े मैदान में तिल धरने का स्थान नहीं रह गया। नर-नारियों का सागर उमड़ा पड़ता था। मिश्रजी को पूरा विश्वास था कि महाशयजी उनसे हारकर जाएँगे और फिर किसी दिन उस देहात में मुँह नहीं दिखाएँगे।

शास्त्रार्थ शुरू हुआ। महाशयजी ने कहा कि पहला प्रश्न मिश्रजी ही पूछें। मिश्रजी ने वेद का एक मन्त्र स्वर-सहित पढ़कर उसका अर्थ पूछा। महाशयजी ने तुरन्त ही उस मन्त्र की कपाल-क्रिया करके बतला दिया कि वह मन्त्र वस्तुतः वायुयान बनाने की एक वैज्ञानिक विधि का ब्यौरा देता है। मिश्रजी ने माथा पीट लिया। इस प्रकार की व्याख्या उन्होंने अपने जीवन में पहली बार सुनी थी। वेदमन्त्र का ऐसा भ्रष्ट उच्चारण भी। वे उठकर चलने के लिए तैयार हो गए।

तब महाशयजी ने आपत्ति की। उनके मतानुसार प्रश्न पूछकर चले जाना शास्त्रार्थ की शर्त के विरुद्ध बात थी। वे आग्रह करने लगे कि मिश्रजी को उनके प्रश्न का उत्तर देकर जाना चाहिए। केवल एक प्रश्न का उत्तर। एक से दो प्रश्न पूछें तो वे अपने बाप के बेटे नहीं। मिश्रजी मान गए। वे पुनः अपने आसन पर जा बैठे।

महाशयजी ने पूछा : "पद्म-पुराण में एक ऐसी नगरी का वर्णन है जो छप्पन करोड़ योजन लम्बी-चौड़ी थी। है कि नहीं, मिश्रजी!"

मिश्रजी ने उत्तर दिया : "हाँ, है।"

"मैं पूछता हूँ कि उस नगरी में यदि किसी को दस्त लग जाते थे तो वह क्या करता था?"

"क्या मतलब!!"

"मतलब यही कि नगरी के बाहर मैदान तक जाते-जाते वह नगरी के सारे रास्ते बिगाड़ देता होगा? अपनी धोती भी बिगाड़ देता होगा?"

मिश्रजी के मस्तक पर जैसे दण्डप्रहार हुआ हो। वे तड़प कर उठे और

चौपाल से नीचे उतर गए। एक सपाटे में। लोगों के हो-हल्ला की पूर्ण अवहेलना करके। उन्होंने अपने घर जाकर ही साँस लिया। और वे सारे दिन किसी से नहीं बोले। रह-रहकर उनके मुख से एक ही वाक्य निकलता था : "शान्तं पापम् !"

उधर महाशयजी ने एक लम्बा-चौड़ा लैक्चर दे मारा। उन्होंने ग्रामीण-जनता को बतलाया कि वेदों को पढ़कर जर्मनी और जापान वालों ने हवाई जहाज बना लिए, कल कारखाने खड़े कर लिए, और अपने देशों को सब प्रकार से समृद्ध एवं बलशाली बना लिया। किन्तु भारत के लोग, पोपों के पाखण्ड में पड़कर, वेद का प्रकृत परिचय ही भुला बैठे। पोपों के पाखण्ड ने भारत को पराधीन बना दिया। एक समय भारत संसार का मुकुटमणि होता था। तभी मनु महाराज ने कहा था कि सब देशों के लोग अपना-अपना आचार भारत के लोगों से सीखें।

तब गाने वाले ने हारमोनियम सँभाल लिया। ढोलक पर थाप पड़ी। और भारत की प्राचीन महिमा से भरे गाने ने जनता को विभोर कर दिया। कैसा था यह देश? भीष्म पितामह का देश! अर्जुन का देश! महाभारत में इस देश के योद्धाओं ने विज्ञान के कैसे-कैसे चमत्कार प्रकट किए थे! और अब? अब तो पोपों के पाखण्ड के कारण यह देश पाताल में जा गिरा था! दूसरे देशों के लोग आकाश में उड़ रहे थे। वेदों की बात मानकर। और वेदों के सच्चे उत्तराधिकारी, ऋषियों के वंशज, कीड़े-मकोड़ों की नाईं धरती पर रेंग रहे थे! किस कारण से? पोपों के पाखण्ड के कारण!

जनता ताली पीट-पीटकर गाने वाले का अभिनन्दन कर रही थी। महाशयजी मञ्च पर दण्डायमान होकर अपनी विशाल शिखा पर बार-बार हाथ फेरते हुए, दृप्त दृष्टि से चारों ओर देख रहे थे। उनकी पूर्ण विजय का पर्व था यह। इस प्रदेश के सबसे बड़े पोप को पछाड़ा था उन्होंने। और वे किसी और भी बड़े पोप से लोहा लेने के लिए लालायित थे।

जीतपुर में आए दिन चर्चा चलने लगी कि महीधर मिश्र पाखण्डी

हैं, पोप हैं। नवयुवकों ने उनको पालागा कहना बन्द कर दिया। बड़े-बूढ़े अब भी उनका मान करते थे। किन्तु वातावरण में उनके विरुद्ध विद्रोह भरता जा रहा था। मिश्रजी का शास्त्राध्ययन अब सारे दिन चलने लगा। तत्त्वचर्चा और भी तीव्र हो गई। अब बिना किसी के बुलाए उन्होंने घर से बाहर निकलना ही छोड़ दिया। आर्यसमाज का आन्दोलन दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा था। उनको शास्त्रार्थ के लिए फिर से बुलाया गया। किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। और महाशयों ने घोषणा कर दी कि मिश्रजी भयभीत हो कर घर में घुस गए हैं।

इसी समय इस देहात में जातिवाद का ज़लज़ला आ गया। देहात में जाटों की आबादी ही अधिक थी। जाट प्राय: उद्धत स्वभाव के किन्तु सरल-बुद्धि लोग थे। कोई उनका आह्वान नहीं करता तो वे एक युग तक करवट नहीं बदलते। किन्तु आह्वान करने वाले के पीछे वे भेड़ के समान चलने वाले थे। उनके एक महापुरुष ने उनको आहूत किया। और वे सब-के-सब उठकर खड़े हो गए। महापुरुष के पदचिह्नों पर चलने के लिए।

महापुरुष ने ब्रिटिश सरकार से विशेष मान-प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अतएव वे कांग्रेस के घोर विरोधी थे। वे गाँव-गाँव में सभा जोड़कर जाटों को समझा रहे थे कि कांग्रेस बनिया-ब्राह्मणों का गुट है। गांधी बनिया। जवाहरलाल नेहरू ब्राह्मण। जाटों को कांग्रेस से कोसों दूर रहना चाहिए। जाटों को बनियों के अत्याचार का अन्त करना है। बहुत पुराने अत्याचार का अन्त। हज़ारों वर्ष से बढ़ते आए अत्याचार का अन्त। देहात में बनियों के विरुद्ध एक आन्दोलन आविर्भूत होने लगा। और बनिया लोग धीरे-धीरे गाँव छोड़कर शहरों में बसने लगे।

मिश्रजी को पुरोहिताई से जो आय होती थी उसमें अधिकांश बनियों से ही मिलती थी। कुछ-एक ब्राह्मणों को छोड़ कर गाँव की अन्य जातियाँ तो केवल एक ही अनुष्ठान जानती थीं। विवाह। वह भी अब आर्य-समाज के महाशय करवाने लगे। और अपने जीवन के अन्तिम काल में मिश्रजी की आजीविका भी संकट में पड़ गई।

मिश्रजी यह दुर्दिन देखने के लिए अधिक दिन जीवित नहीं रहे। योरोप

में दूसरा महायुद्ध छिड़ा और बाजारों में भीषण मँहगाई आई उसके पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। किन्तु उनके पुत्र गोपालकृष्ण उन्हीं दिनों काशी से लौटे थे। शास्त्री की परीक्षा पास करके। उनका सारा जीवन संकट में पड़ गया। वे संस्कृत-विद्या तथा पुरोहिताई के काम के अतिरिक्त आजीविका का कोई अन्य उपाय नहीं जानते थे। अतएव उनको घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ा।

विधाता की कृपा से उनका परिवार बहुत नहीं बढ़ा। सरस्वती ने कई सन्तानों को जन्म दिया। किन्तु उन सब में से केवल साधना ही जीवित रह पाई। आर्य-समाज के प्रचारकों के लिए यह दुर्विपाक भी पोपलीला के पापपूर्ण होने का प्रमाण था। भगवान् पोप को उसके पाखण्ड का दण्ड दे रहे थे। शास्त्रीजी ने मौन रहकर ही सब सुन लिया। आत्मार्जना अथवा प्रतिवाद के लिए उन्होंने एक बार भी मुँह नहीं खोला।

शास्त्रीजी के कुछ यजमान निकटवर्ती नगरों में निवास करते थे। वे ही जो जाटों के भय से गाँव छोड़ गए थे। उनसे कुछ आय अब भी शास्त्रीजी को हो जाती थी। किन्तु उनके घर पर शास्त्रीजी का मान अब पहले जैसा नहीं होता था। नगर में जाकर यजमानों की मनोवृत्ति बदलने लगी थी। और उनके लड़के-लड़कियाँ आर्य-समाज की ओर आकृष्ट होने लगे थे। वे लोग अब ब्राह्मण को भाड़े पर बुलाया हुआ भृत्य ही समझते थे। वैसा ही जैसा घर पर मशीन लाकर कपड़े सी जाने वाला दर्जी। यदि शास्त्री जी पर परिवार के भरण-पोषण का भार नहीं होता तो वे उन यजमानों के घर की देहली भी नहीं लाँघते।

इन्हीं दिनों अरुण जीतपुर के स्कूल में पढ़ने के लिए अपने मामा के घर आया। शास्त्रीजी का घर उनके पड़ौस में था। वह दो-चार दिन में ही साधना से हिल-मिल गया। वह अपने मामा के बच्चों की देखादेख शास्त्रीजी को चाचाजी और सरस्वती को चाचीजी कहने लगा। नाते में शास्त्रीजी उसके मामा होते थे। किन्तु उसने बड़ा होकर भी अपनी सम्बोधन-प्रणाली में परिवर्तन नहीं किया। शास्त्रीजी तथा सरस्वती के कहने पर भी नहीं।

अरुण हाई स्कूल में पढ़ता था। और साधना घर पर ही। शास्त्रीजी उसको संस्कृत की शिक्षा दे रहे थे। किन्तु दोनों में बहुत गहरा सौहार्द था। अरुण अपनी पुस्तक साधना को सुनाता। साधना अपना पाठ अरुण को। और साधना के अनुरोध से अरुण ने शपथ ली थी कि वह कभी भूलकर भी किसी आर्यसमाजी का भजन अथवा प्रचार नहीं सुनेगा। वह नित्यप्रति शास्त्री के घर पर जाकर साधना के साथ पूजा में बैठता था और शास्त्रीजी के इष्टदेव, श्रीकृष्ण, की प्रतिमा के आगे मस्तक टेकता था।

धीरे-धीरे अरुण शास्त्रीजी के घर पर ही अपना अधिकतर समय बिताने लगा। वह भोजन भी बहुत बार उसी घर में कर लेता था। वहाँ की रूखी-सूखी रोटी उसको ननिहाल के घी-दूध से अधिक तृप्तिदायक प्रतीत होती थी। पास-पड़ौस के लोग कहने लगे कि अरुण पिछले जन्म में अवश्य ही शास्त्रीजी का कोई आत्मीय रहा होगा। अन्यथा एक सम्पन्न घर के लड़के का एक दरिद्र घर में इस प्रकार घुल-मिल जाना असम्भव होता।

अरुण दसवीं जमात में प्रविष्ट हुआ। साधना भी अब चौदह-पन्द्रह वर्ष की हो गई थी। गाँव के समाज में उनके सम्बन्ध पर टीका-टिप्पणी होने लगी। उस समाज में इतने बड़े लड़के-लड़कियों का खुलकर मिलना-जुलना विहित नहीं था। चर्चा शास्त्रीजी के कानों तक पहुँची। उन्होंने अनसुनी कर दी। वे अरुण को पहिचानते थे। साधना को भी। और उनके अन्तर में यह जोड़ी राधाकृष्ण की जोड़ी के समान बस भी चुकी थी।

तब एक दिन एक आर्य-समाजी प्रचारक ने हारमोनियम कूटकर एक व्यङ्ग-भरा गीत गा दिया। गीत का आशय था पोप का नया पापाचार। पोप अपनी जवान लड़की को खुले-आम व्यभिचार के मार्ग पर ले जा रहा था। शास्त्रीजी ने कटाक्ष को मौन रहकर सुन लिया। अरुण के मामा-मामी ने शास्त्री जी को टोका। शास्त्रीजी ने कह दिया : "भैया ! यह जोड़ी तो विधाता ने मिलाई है। अब हम मनुष्य इसको क्या तोड़ेंगे।"

मामा-मामी ने अरुण को टोका। अरुण बोला कि यदि शास्त्रीजी ने अनुमति दी तो वह साधना के साथ ब्याह कर लेगा। मामा-मामी

अवाक् रह गए। भरे घर का लड़का भुखमरे की बेटी ब्याहेगा!! किन्तु वे अरुण को पहिचानते थे। अरुण आसानी से कभी कोई हठ नहीं पकड़ता था। किन्तु यदि वह एक बार किसी बात पर अड़ जाता था तो टस-से-मस नहीं होता था। शास्त्रीजी तथा साधना के सिवाय उसको समझाने की शक्ति भी किसी अन्य मनुष्य में नहीं थी। इसलिए मामा-मामी मौन हो गए। उनको भय लग रहा था कि बात फैली तो अरुण के घर वाले उनको ही दोष देंगे। कहेंगे कि उन्होंने लड़के को ठीक समय पर नहीं सँभाला। और फिर अरुण तो साल-छः महीने में दसवीं पास करके कहीं जाएगा ही। तब वह जाने, और उसके घर वाले जानें।

एक दिन प्रातःकाल साधना ने पूजाघर में प्रवेश किया तो उसका हृदय विजड़ित हो गया। श्रीकृष्ण की पुरानी प्रतिमा अपने स्थान पर नहीं थी। आले में प्रतिमा का आसन यथास्थान रखा था। पूजा के अन्य पात्र इत्यादि भी। किन्तु प्रतिमा न जाने कहाँ चली गई थी। साधना ने पूजा-घर का कोना-कोना छान लिया। हार कर वह शास्त्रीजी के पास जा रही थी कि अरुण आ पहुँचा। और साधना को अनायास ही न जाने क्या प्रेरणा मिली। वह अरुण का हाथ पकड़ कर बोली : "अरुण! तुम तनिक इस चौकी पर बैठ जाओ तो!"

अरुण मुँह बाए उसकी ओर देख रहा था। साधना ने अपना अनुरोध दोहराया : "सुना नहीं, अरुण! मैं कहती हूँ, तुम इस चौकी पर बैठ जाओ।"

अरुण ने पूछा : "मैं ? क्यों भला ?"

"देखते नहीं भगवान् की प्रतिमा अपने स्थान पर नहीं है ?"

"प्रतिमा कहाँ गई ?"

"मैं नहीं जानती।"

"तो पूजा कैसे होगी ?"

"पूजा तो होगी ही। पूजा नहीं टल सकती। मैं तुमको श्रीकृष्ण मान कर तुम्हारी पूजा करूँगी।"

"पागल हुई है, साधना!"

"भक्त तो होता ही पागल है, अरुण !"

साधना ने अरुण का हाथ पकड़ कर उसे चौकी पर बिठा दिया। फिर वह उसके चरणों में मस्तक टिकाकर बोली : "मेरी पूजा स्वीकार कर लेना, मेरे आराध्यदेव !"

और दूसरे क्षण साधना आँखें मूँद कर ध्यानावस्थित हो गई। उसके मुख की मुद्रा देखकर अरुण भी आँखें मूँदे बिना नहीं रह सका। वह भी धीरे-धीरे ध्यानावस्थित होने लगा। साधना ने स्तोत्र गाया तब भी वह ध्यानावस्थित रहा। किन्तु उसके नयनों से अश्रुधार बह चली। साधना ने उसके गले में पुष्पमाला पहिनाई तब भी वह ध्यानावस्थित था। माला के स्पर्श से उसको रोमाञ्च हो गया। मानो रोम-रोम में किसी आनन्द का अथाह सागर उमड़ने वाला हो।

पूजा समाप्त हुई। अरुण ने चौकी से उठकर कहा : "साधना ! यह तू ने क्या किया ?"

साधना शान्त रहकर बोली : "क्यों ? पूजा ही तो की है। पहले मेरी पूजा श्रीकृष्ण की पाषाण-प्रतिमा के प्रति अर्पित होती थी। आज मैंने श्रीकृष्ण के मानुष रूप की पूजा की है। भगवान् का अधिष्ठान तो दोनों में ही एक-समान है।"

"शास्त्रीजी सुनेंगे तो दुखी होंगे।"

"मैं अभी जाकर पिताजी से पूछ लेती हूँ। यदि मुझसे कोई पाप हुआ है तो मैं प्रायश्चित्त करूँगी।"

साधना ने तुरन्त ही शास्त्रीजी के पास जाकर अपनी अनायास प्रेरणा का विवरण सुना दिया। शास्त्रीजी सब-कुछ सुनकर मुस्करा उठे। और बोले : "बेटी ! भगवान् न प्रतिमा में हैं, न मनुष्य में। और वे सर्वव्यापी भी हैं। उनका प्रसाद वहीं प्रादुर्भूत होता है जहाँ भक्त उनकी आराधना करे। यदि तुमको अरुण में उनका अधिष्ठान दिखाई देता है तो तू वहीं पर उनकी पूजा किया कर। इस प्रकार की पूजा तुझे पवित्र कर देगी। दोष का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

साधना ने पूछा : " और अरुण को दोष लगेगा, पिताजी !"

"अरुण ने क्या पूजा पाने का आग्रह किया था ?"

"नहीं, उसने कोई आग्रह नहीं किया। वह तो मेरा आग्रह मानकर ही चौकी पर बैठा था।"

"तब उसको कैसे कोई दोष लगेगा, बेटी! शिष्य गुरु को भगवान् मानकर गुरु की पूजा करता है। तो क्या गुरु को कोई दोष लगता है ? पत्नी पति को भगवान् मानकर पति की पूजा करती है। तो क्या पति को कोई दोष लगता है ? दोष वहाँ लगता है जहाँ अहंकार हो, जहाँ अपनी पूजा करवाने का आग्रह हो। अन्यथा दोष नहीं लगता। भक्त की भावना अपने प्रत्येक आराध्य को पवित्र बना लेती है।"

उस दिन साँझ तक प्रतिमा के खो जाने का समाचार सारे गाँव में फैल गया। एक आर्य-समाजी महाशय अपने श्रीमुख से कहते फिर रहे थे कि पोप के घर का पत्थर पुरानी पोखर की तह में पड़ा है और ऊपर उठने का नाम भी नहीं लेता। महाशय ने तड़के ही शास्त्री के घर में घुसकर प्रतिमा चुरा ली थी और पुरानी पोखर में फेंक दी थी। शास्त्रीजी ने अनेक बार उनके साथ शास्त्रार्थ करने से इन्कार कर दिया था। इसीलिए उन्होंने अपने पक्ष से इस प्रकार का प्रबल पराक्रम करके शास्त्रीजी को पराजित किया था!

अरुण की इच्छा थी कि शहर जाकर श्रीकृष्ण की एक अन्य प्रतिमा ले आए। किन्तु साधना ने मना कर दिया। वह बोली : "अब तो मैं उसी प्रतिमा की पूजा करूँगी जो मुझको अपने अन्तर की अनायास प्रेरणा से प्राप्त हुई है। मेरी प्रतिमा तो मेरे पास है। मेरे हृदय में। अब उसको अपने से बाहर काठ के आसन पर प्रतिष्ठित करके क्या होगा ?"

और वह नित्यप्रति अरुण की ही पूजा करने लगी। अरुण नित्यप्रति चौकी पर बैठकर साधना के गाए हुए स्तोत्र सुनता था। साधना की पहिनाई हुई माला पहिनता था वह। स्तोत्र सुनकर वह अपनी आँखों से अश्रुधार बहाता था। विह्वलता की अनाविल अश्रुधार। माला का स्पर्श करके उसे रोमाञ्च हो जाता था। आनन्द का अविकल रोमाञ्च।

: ४ :

दीपक जलने के समय अरुण गाँव के बाहर से घूमकर लौटा तो वह सीधा शास्त्रीजी के घर पर जा पहुँचा। और उसने आँगन में प्रवेश करते ही देखा कि शास्त्रीजी सामने पड़ी खटिया पर सुस्ता रहे हैं। अरुण ने उनके पाँव छूकर प्रणाम किया। शास्त्रीजी उसके सिर पर हाथ फेरकर बोले : "आओ, अरुण! मेरे पास बैठो, बेटा!"

अरुण ने पूछा : "आप कब आए, चाचाजी!"

"अभी, एक घड़ी हुई होगी।"

"मैं तो समझा था कि आप कल लौटेंगे।"

"सोचा तो मैंने भी यही था। नरायणपुर पहुँचा तो बेहद थक गया था। किन्तु वहाँ मुझसे ठहरा नहीं गया। सोचा, अपने घर जाकर ही सोऊँगा।"

"उस पाठशाला का क्या रहा?"

"पाठशाला तो खुल रही है।"

"आपको वहाँ काम मिलेगा ना?"

शास्त्रीजी सूखी हँसी-हँसने लगे। फिर बोले : "अरुण बेटा! मैं किसी काम का होता तो मुझे अपने ही गाँव में न काम मिल जाता। अन्य गाँव जाने का प्रश्न ही काहे को उठता?"

"किन्तु बात क्या हुई? आपके समान पण्डित और कहाँ मिलेगा?"

"मेरी पण्डिताई तो पुरानी पड़ गई, बेटा! युग बदल गया। नए युग की परीक्षाएँ मुझसे पास नहीं होतीं।"

"क्या किसी ने आपकी परीक्षा ली थी वहाँ?"

"सेठजी के छोटे भाई आए हुए थे। उन्होंने मनुस्मृति के भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में से एक श्लोक का अर्थ मुझसे पूछा। मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार अर्थ बतला दिया। किन्तु वे तो मुझ पर बिगड़ बैठे। कहने लगे कि मैं अर्थ का अनर्थ कर रहा हूँ। मैं चुपचाप उठ कर चला आया।"

"सेठजी के छोटे भाई क्या संस्कृत के विद्वान् हैं?"

"सुना तो नहीं। इतना ही सुना है कि वे नवीं जमात तक स्कूल

में पढ़े थे। अँग्रेज़ी के स्कूल में।"

"तब उनको कैसे मालूम कि सही अर्थ क्या है?"

"शास्त्र के अर्थ को लेकर तो विवाद हुआ ही करता है, बेटा! उनको भी कोई अर्थ सूझ गया। वे समर्थ हैं।"

"श्लोक क्या था?"

"दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसम्भवम्"

"इसका अर्थ आपने क्या किया?"

"मेरी बुद्धि के अनुसार, और यदि भगवान् मनु ने पाणिनी का पूर्ण तिरस्कार नहीं किया है तो, इस श्लोक का यही अर्थ है कि शुक्त पदार्थों में दधि तथा दधि से बने हुए समस्त पदार्थ भक्ष्य है।"

"उनको क्या आपत्ति थी?"

"वे कहने लगे कि सनातन धर्म का कोई भी शास्त्र, किसी अवस्था में भी दूध-दही अथवा दूध-दही से बने किसी पदार्थ को भक्ष्य नहीं बतला सकता। अतएव मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।"

"यह तो आज नई बात सुनी। तो क्या दूध-दही खाने वाले सब लोग सनातन धर्म का हनन कर रहे हैं? मैंने शास्त्र नहीं पढ़े, चाचाजी! किन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ इस प्रकार का विधान हमारे शास्त्रों में नहीं हो सकता।"

"बेटा! श्लोक का अर्थ तो वही है जो मैंने बतलाया। मनुस्मृति के पुराने-से-पुराने भाष्यकार वही अर्थ बतलाते हैं।"

"तो फिर?"

"सुना है कि सेठजी स्वयं दूध को गोमांस के समान अभक्ष्य मानते हैं। उनके भाई ने जो अर्थ किया वह वस्तुतः सेठजी का बतलाया हुआ अर्थ ही है।"

"सेठजी संस्कृत जानते हैं?"

"मैंने तो नहीं सुना। हाँ, उनको संस्कृत की पुस्तकें इकट्ठा करने और छापने की धुन जरूर है।"

अरुण चुप हो गया। उसको क्रोध के साथ-साथ रोना भी आ रहा

था। शास्त्रीजी ने आवाज़ देकर साधना को बुला भेजा। वह रसोई घर से आँखें पोंछती हुई निकली। धुआँ लग जाने के कारण उसकी आँखें लाल थीं। मुख पर पसीने की बूँदे छलक रही थीं। वह अरुण को देख कर बोली : "तुम अभी से आ धमके ! अभी तो मेरा चूल्हा भी ठीक से नहीं सुलग पाया है।"

अरुण ने कहा : "कच्चा-पक्का जो भी बना हो वही खिला दे, साधना ! सच, बहुत बेढब भूख लगी है। गाँव का हवा-पानी ही ऐसा है।"

"क्या खिला दूँ भला ! कुछ तैयार हो तभी तो ?"

अरुण ने शास्त्रीजी से सहायता माँगी : "चाचाजी ! आप सिफारिश कर दीजिए ! साधना तो अब मेरी बात ही नहीं सुनती।"

शास्त्रीजी ने हँसकर साधना से पूछा : "यह तुम्हारे विरुद्ध कैसी शिकायत है, बेटी !"

साधना ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह क्रोध का भाव धारण करके अरुण की ओर देखने लगी। अरुण ने शास्त्रीजी से कहा : "चाचाजी ! सुबह मैंने इससे कहा कि एक प्याला चाय पिला दे। और आप जानते हैं यह क्या बोली ?"

शास्त्रीजी ने पूछा : "क्या बोली ?"

"बोली, पैसे लगेंगे, जेब में लेकर नहीं आए हो तो कन्हैया के हाथ भिजवा देना।"

साधना उबल पड़ी : "झूठे कहीं के ! स्वयं तो नास्तिक बन गए और दोष मुझको देते है। लाज नहीं आती !!"

अरुण ने शास्त्रीजी से कहा : "आप ही देख लीजिए, चाचाजी ! मुझ पर न जाने क्यों इसको इतना क्रोध आ रहा है।"

शास्त्रीजी ने साधना को पास बिठा कर पूछा : "क्या बात है, बेटी।"

साधना ने उत्तर दिया : "इनसे पूछिए !"

शास्त्रीजी ने अरुण से पूछा : "तुम लोगों का क्या कुछ झगड़ा हो गया है, अरुण !"

अरुण बोला : "झगड़ा कुछ नहीं, चाचाजी ! बस साधना को यह

अभिमान हो गया कि यह बहुत संस्कृत जानती है और शास्त्र की व्याख्या कर सकती है। और मुझे तो आप जानते ही हैं कि मैं कैसा बजरबट्टू हूँ।"

साधना तमक उठी : "और, पिताजी ! इनको यह अभिमान हो गया है कि ये शहर में रहते हैं, अँग्रेजी की पोथियाँ पढ़ते हैं। मैं गाँव की गँवार भला इनकी क्या बराबरी करूँगी ?"

अरुण ने साधना से सीधी बात पूछी : "मैंने कब कहा कि गाँव में गँवार बसते हैं ?"

साधना ने उत्तर दिया : "और नहीं तो क्या ? सुबह चाय पीने को पूछा। लाट साब कहने लगे—साड़ी ले लोगी तो चाय पीऊँगा ! हम गाँव वाले जैसे किसी का आतिथ्य करना ही नहीं जानते !"

शास्त्रीजी बीच में पड़ गए : "अरी तो अरुण कौन-सा शहर का रहने वाला है। यह भी तो गाँव का लड़का है।"

साधना बोली : "होंगे किसी दिन ! अब तो इनके रंग-ढंग से यही लगता है कि ये शहर के ही हो गए।"

शास्त्रीजी ने पूछा : "तो फिर अरुण ने चाय पीई या नहीं ?"

"कहाँ पीई ? जैसे आए थे वैसे ही चले गए।"

"इसीलिए इसको रात के भोजनका निमन्त्रण दिया गया है। अब समझा।"

"माँ ने दे दिया निमन्त्रण। मैं तो नहीं चाहती थी। अब ये खाना खाने से पहले फिर कहेंगे—पैसे ले लो तो खाना खाऊँगा !"

अरुण बोला : "आप साक्षी हैं, चाचाजी ! मैंने अभी-अभी इससे खाना माँगा था। पैसों का नाम भी लिया है मैंने।"

शास्त्रीजी ने बात बदलने के लिए साधना से पूछा : "तेरी माँ कहाँ गई है, बेटी ! अभी तो यहीं थी।"

साधना ने उत्तर दिया : "यहीं गई हैं, पिताजी ! पास में। अभी आती ही होंगी।"

इसी समय सरस्वती ने बाहर के द्वार से आँगन में प्रवेश किया। और

वे तुरन्त ही बोल उठीं : "यह लो, काम बन गया। गेहूँ का आटा, घी, चीनी —सब मिल गया। पर चौधरायन की खुशामद बहुत करनी पड़ी।"

साधना उठकर भाग खड़ी हुई। अरुण तुरन्त समझ गया कि उसके भागने का कारण क्या है। वह अरुण के सामने अपनी माँ के मुख से अपनी ग़रीबी को बखान सुनना नहीं चाहती थी। और सरस्वती भी वह बखान नहीं करतीं। किन्तु उन्होंने तो अरुण को देखा ही नहीं था।

साधना को जाते देखकर सरस्वती ने पुकारा : "ले, साधना! ले जा सब समान। रसोई में रख दे। मैं अभी आती हूँ।"

साधना ने कोई उत्तर नहीं दिया। न उसने माँ के हाथ से सामान ही लिया। वह रसोई घर में जा घुसी। अरुण बैठा-बैठा सब देख-सुन रहा था। उसने मुख फेर कर अपने आँसू पोंछ लिए।

अरुण को देखकर सरस्वती ने कहा : "तू आ गया, अरुण! भूख लगी होगी। लो, मैं अभी खाना बनाए देती हूँ।"

सरस्वती रसोईघर की ओर चली गई। अरुण ने शास्त्रीजी से पूछा : "वो पाठशाला का काम किस को मिला, चाचाजी!"

शास्त्रीजी बोले : "अकबराबाद का एक लड़का है अँग्रेजी स्कूल पास। सेठजी के भाई ने उसी को पास किया है।"

"वह संस्कृत जानता है।"

"आर्य-समाजी है। जानता ही होगा।"

"क्या उसकी भी परीक्षा ली गई ?"

"मेरे सामने ही ली गई थी। मेरी परीक्षा हो जाने के उपरान्त। मनुस्मृति के उसी श्लोक का अर्थ उससे भी पूछा गया था।"

"उसने क्या अर्थ किया ?"

"उसने कह दिया कि दही तथा दही के बने हुए पदार्थ अभक्ष्य हैं।"

अरुण मौन हो गया। उसको क्रोध आ रहा था। सेठजी के ऊपर, सेठजी के भाई पर। और आर्य-समाजी पर। आर्य-समाजी होकर चाटुकारी करता है, बेईमान! शास्त्रीजी फिर सूखी हँसी हँसकर बोले : "भइ, अरुण! वह अर्यसमाजी था खूब! अपने अर्थ के समर्थन में उसने हितोपदेश का

एक श्लोक सुना दिया। और उसका उल्टा-सीधा अर्थ बतलाकर कहने लगा कि वेद का यह मन्त्र भी दही को अभक्ष्य बतलाता है।"

अरुण से भी हँसे बिना नहीं रहा गया। किन्तु उस हँसी में कड़वाहट थी। एक विवशता की वेदना भी।

इसी समय साधना वहाँ आ पहुँची। रसोईघर से निकलकर। शास्त्रीजी खटिया से उठकर बोले : "बेटी ! मैं ज़रा नहा-धो आता हूँ। तब तक अरुण को भोजन करा देना। मैं जल्दी ही आऊँगा। किन्तु तुम मेरी बाट मत देखना, बेटी !"

शास्त्रीजी चले गए। साधना खड़ी रही। अरुण बोला : "बैठ जा ना, साधना !"

साधना बैठ गई। फिर वह बोली : "माँ ने कहा है कि तुम्हारे पास आकर बैठूं।"

"अपने आप तो शायद तू नहीं आती ?"

"कभी भी नहीं ?"

"क्यूं ?"

"अब ऐसे आदमी के पास कोई क्या आए !"

"कैसा आदमी हूँ मैं ?"

"नास्तिक ! ऊपर से झूठे !!"

अरुण ने साधना का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा : "तू तो सचमुच मुझसे रूठ गई !"

साधना बोली : "मैं क्यों किसी से रूठने लगी !"

"मैं किसी की बात तो नहीं कह रहा। मैं तो अपनी बात कह रहा हूँ।"

"तो तुमने चाय क्यों नहीं पीई ? दशहरे की छुट्टियाँ निकल आयीं। मैंने सोचा तुम आओगे। इसलिए मैंने चाय लाकर रखी। कहीं-कहीं से माँग कर। इस घर में तो कोई चाय पीता नहीं।"

"अच्छा, तो कल ज़रूर पीऊँगा। पी तो लेता अभी। किन्तु अभी तो रोटी खाऊँगा।"

"इस समय चाय पीने की सलाह कौन देता है भला ?"

"मैं सोचता हूँ, चाय पी लूँ तो तेरा गुस्सा ही उतर जाए।"

"और तुमने अपने आने की खबर क्यों नहीं दी ? एकबारगी जैसे आसमान से टपक पड़े।"

"अब की बार सोचा कि चुपचाप पीछे से आकर तेरी दोनों आँखें ढाँप लूँगा और पूछूँगा, बतलाओ कौन ?"

"मैं तुरन्त बतला देती।"

"कैसे बतला देती भला ?"

"वाह, इतने दिन से जो साथ रहा हो, उसको क्या आँखें ही पहिचानती हैं ? मन भी तो पहिचानता है।"

अरुण मौन हो गया। विभोर होकर। साधना ने दो-क्षण उपरान्त पूछा: "मेरी साड़ी कहाँ है ?"

अरुण ने चौंक कर उत्तर दिया : "क्यों ?"

"लाए क्यूँ नहीं ? खाली बातें ही बना रहे थे।"

"ना बाबा ! साड़ी का तो नाम लेने से ही मुझको डर लगता है।"

"कल ले आना। माताजी की साड़ी भी।"

"ले लोगी ?"

"हाँ, ले लूँगी।"

अरुण ने सन्तोष की साँस ली। साधना बोली : "साँस क्यों मार रहे हो ?"

अरुण बोला : "साधना ! मेरी बहुत दिन से यह साध थी कि तुम मेरे हाथ की लाई हुई कोई चीज़ ले लो। न तुम्हारा हठ टला, न मेरा मन खिला। आज मैं बहुत खुश हूँ।"

"अब नास्तिक तो नहीं बनोगे ना ?"

अरुण सावधान हो गया। फिर वह बोला : "वह दूसरी बात है। इसका उससे क्या सम्बन्ध ?"

साधना बोली : "सम्बन्ध कैसे नहीं ? आखिर तुम नास्तिक क्यों बनने चले थे ? यही सोचकर तो कि मैं तुम्हारी लाई हुई चीज नहीं लेती ?"

"तू तो फिर ठिठोली करने लगी। भला इतनी-सी बात पर भी कोई

नास्तिक हुआ करता है ।"

"क्यूँ नहीं ?"

"कभी सुनी नहीं ऐसी बात ।"

"वाह ! गाँव का वह आर्य-समाजी था ना ! वही धनपत ! वह एक दिन पिताजी के पास आया । कहने लगा, सनातनी बनना चाहता हूँ । पिताजी ने कारण पूछा । वह बोला कि उसका आर्यसमाज के अधिष्ठाता से झगड़ा हो गया है । बस, और कोई बात नहीं । इसलिए वह सनातनी बनने को तैयार हो गया ।"

अरुण हँसने लगा । फिर बोला : "तो तेरा मतलब यह है कि मैं भी धनपत जैसा मूर्ख हूँ ।"

"नास्तिक मूर्ख तो होता ही है । तुम मूर्ख नहीं हुए हो तो हो जाओगे । पक्के नास्तिक बनने की देर है, महामूर्ख बन जाओगे ।"

"पर मेरी बुद्धि विद्रोह कर रही है, साधना ! इसको मैं कैसे समझाऊँ ?"

"बुद्धि को समझाया नहीं जाता, अरुण ! बुद्धि को समझाने का जितना ही प्रयास करोगे उतनी ही यह बिगड़ेगी । तुम अपनी बुद्धि को शान्त करके अपनी श्रद्धा का आश्रय लो ।"

"श्रद्धा भी तो डगमगा रही है ।"

"क्यूँ ?"

"बुद्धि पूछती है कि भगवान् ने यह क्या संसार बनाया ? श्रद्धा से उत्तर नहीं बन पड़ता ।"

"संसार में क्या दोष है ? अच्छा ही तो है संसार । भगवान् ने सोच-समझ कर ही बनाया है । उसमें भला भूल कहाँ हो सकती है ?"

"मुझे तो पद-पद पर भूल दिखाई देने लगी ।"

"कौन-सी भूल ?"

"देख, साधना ! संसार में सज्जन मनुष्य भी हैं, दुर्जन मनुष्य भी । संसार में यदि न्याय होता तो सज्जनों को सुख मिलता, दुर्जनों को दुख । किन्तु ऐसा तो होता नहीं । इसका उलटा ही होता रहता है ।"

साधना ने अरुण की बात का उत्तर नहीं दिया। वह मानो कुछ विचार करने लगी हो। अरुण ने कहा : "मैं बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि साधना के पास साड़ी खरीदने के पैसे भी नहीं...

साधना बीच में ही बोल उठी : "सो तो जने कितनों के पास नहीं हैं।"

"किन्तु कितनों को तो मैं नहीं जानता, साधना ! मैं तो तुम लोगों को जानता हूँ। तुम्हारा दुख-दर्द मैंने देखा है...

"हमें तो कोई दुख नहीं।"

"मैं तुम्हारी दरिद्रता को लेकर न जाने किती बार रोया हूँ। भगवान् से इस दरिद्रता का समाधान मांगा है मैंने। किन्तु समाधान तो किसी दिन मिला नहीं, और...

"मैं नास्तिक हो गया ! बस !! इतनी सी बात पर !!!"

"यह क्या कोई साधारण बात है, साधना ! तुम सुन्दर हो, सुशील हो, सुसंस्कृत हो। तुम्हारे माता-पिता देवी-देवताओं के अवतार हैं। फिर भी तुम सब लोगों के जीवन में इतना अभाव, इतना अनादर...

"संसार में हम जैसे तो बहुत हैं। हम क्या अकेले हैं जिनके जीवन में अभाव और अनादर है ?"

"तू तो मेरी ही बात कह रही है। मैं पूछता हूँ कि यह विपरीत व्यवस्था है ही क्यों ?"

"विधाता का ऐसा ही विधान है।"

"विधाता का अन्याय कह, साधना !"

"विधाता अन्याय नहीं कर सकता, अरुण ! उसके न्याय की तुलना में तो मनुष्य का बड़े-से-बड़ा न्याय भी न्यून है।"

"किन्तु मनुष्य का न्याय तो समझ में आ जाता है। विधाता का न्याय भला कैसे समझा जाए ?"

"शास्त्रों की सहायता से।"

"शास्त्र क्या कहते हैं ?"

"शास्त्र के अनुसार यह संसार भगवान् की आनन्दमयी लीला है।

इसमें दुख का अथवा किसी प्रकार के दोष का लेशमात्र भी नहीं।"

"इस कथन का प्रमाण ?"

"आप्त पुरुषों ने अपने अन्तर में सत्य का साक्षात्कार करके ऐसा ही देखा है।"

अरुण मौन हो गया। बात उसकी समझ में कम आई। साधना ने पूछा : "समाधान हो गया, अरुण !"

अरुण बोला : "मेरी बुद्धि बार-बार कहती है कि सब घोटाला सामाजिक अव्यवस्था के कारण ही हुआ है।"

"सामाजिक अव्यवस्था तो है ही। सतयुग में ऐसा थोड़े ही होता था। उस युग में न कोई दुर्जन मनुष्य था, न कोई दुःख। त्रेतायुग के विषय में भी गोस्वामीजी का वचन है : दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज्य नहीं काहुहि ब्यापा।"

"वे युग बीत क्यों गए ?"

"धर्म की हानि होती रही। और यह कलियुग आ गया।"

"अच्छा, कलियुग ही सही। परन्तु इसका कुछ प्रतिकार तो करना होगा।"

"धर्म का उद्धार हुए बिना प्रतिकार असम्भव है। और धर्म के उद्धार के लिए तो भगवान् स्वयं अवतार लेंगे।"

अरुण फिर मौन हो गया। बात फिर उसी ओर बढ़ रही थी। अन्धविश्वास की ओर। साधना ने फिर पूछा : "अच्छा, अरुण ! तुम यह तो बतलाओ कि तुम कैसा न्याय चाहते हो ? न्याय की तुम्हारी परिभाषा क्या है ?"

अरुण ने उत्तर दिया : "सज्जनों को सुख मिले, दुर्जनों को दण्ड।"

"सुख माने ?"

"सुख...सुख माने सुख।"

"अर्थात् साधना साड़ी खरीदने के लिए पैसे पा जाए तो साधना सुखी हो जाएगी। हैं ?"

साधना हँसने लगी। अरुण बोला : "बात की छीछा-लेदर मत कर, साधना ! सज्जन लोगों को साधारण जीवयापन के साधन तो कम-से-कम मिलने ही चाहिएँ।"

"किन्तु उतने से क्या सज्जन लोगों की समस्या सुलझ जाएगी ?"

"सुलझ क्यों नहीं जाएगी ?"

"तब तो वे लोग सज्जन नहीं हो सकते।"

"क्यूँ ?"

"सज्जन लोग क्या सुख पा कर ही सन्तुष्ट हो जाएँगे ?"

"और उनको क्या चाहिए ?"

"सज्जन लोग तो वे ही होते हैं जो बन्धन से मुक्ति पाने की कामना करते हैं।"

"कौन से बन्धन से ?"

"अविद्या का बन्धन। आवागमन का बन्धन। असली बन्धन तो वही है। यह ग़रीबी-अमीरी...इसका भला क्या महत्त्व है। यह आती है, चली जाती है। इसकी चिन्ता करके क्या मनुष्य अपनी असली खोज का त्याग कर देगा ?"

"असली खोज क्या है ?"

"अमृतत्व की खोज। अनन्त आनन्द की खोज। श्रीकृष्ण के साथ वृन्दावन में रास रचाने की स्पृहा। उस खोज के सामने सांसारिक सुख की खोज तो ऐसी है जैसे मानसरोवर के कूल पर बैठकर क्षुद्र कूप खोदना। और...

रसोईघर से सरस्वती की आवाज़ आई : "अरी सद्दो ! ओ सद्दो !! दालान में आसन बिछा दे, बेटी ! दीपक भी रख दे। खाना तैयार है।"

साधना ने खटिया से उठकर प्रत्युत्तर दिया : "अभी लो, माता जी !

अरुण ने कहा : "बहुत जल्दी बना खाना !"

साधना बोली : "साग तो तैयार था। माँ ने आटा गूँद लिया। हलवा बना दिया। देर काहे में लगती ?"

"तू तो कह रही थी...

साधना ने अरुण की नाक पकड़ कर मरोड़ दी। और फिर वह वहाँ से चली गई। अपने बिखर-बिखर जाते हुए केश-भार को बाँधती हुई। अरुण बैठा-बैठा उसको देखता रहा...देखता रहा...

दूसरा परिच्छेद

: १ :

साँझ के छः बजे होंगे। जनवरी की साँझ के। अरुण एक सिनेमा-हॉल से बाहर निकला। नई दिल्ली के सिनेमा हॉल से। उसके साथ एक लड़की थी। उसी की उम्र की। किन्तु उसकी अपेक्षा अत्यधिक आधुनिक। शरीर से दुबली। आयतन अपेक्षाकृत छोटा। रंग बहुत गोरा। कुछ-कुछ पीला-पीला। नखशिख सोलहों आने शुद्ध। वेश-भूषा सादी किन्तु सुरुचि-पूर्ण। शिर के केश जूड़े में बंधे थे। और जूड़े में खोंसा गया था एक श्वेत रंग का बड़ा-सा गुलाब।

फुटपाथ पर आकर अरुण ने लड़की से पूछा: "अब क्या प्रोग्राम है, रञ्जना!"

रञ्जना ने उत्तर दिया: "चलो, एक प्याला कॉफी पीई जाए।"

"कहाँ?"

"कॉफी हाउस में।"

"वहाँ तो गुल-गपाड़ा बहुत होता है। कहीं और क्यों न चलें?"

"वहाँ जहाँ सबके सब स्त्री-पुरुष सूम-से बैठे हुए एक-दूसरे से शरमा रहे हों? हैं, अरुण!"

अरुण मुस्करा कर चुप रहा। रञ्जना ने कहा: "सच, इन अपर-क्लास रेस्तराँज़ में मेरा तो दम घुटता है। सब साले ऐसे बनकर बैठते हैं जैसे अँग्रेज़ की असली औलाद हों। नहीं, भइ! हम तो कॉफी हाउस ही जाएँगे। और तुमको भी वहीं चलना पड़ेगा।"

अरुण बोला: "तो फिर वहीं चलो। मुझको क्या? मैं तो देहाती

हूँ। तुम्हारी तरह नई दिल्ली के रेस्तराँज का एक्सपर्ट तो नहीं।"

रञ्जना ने अरुण के गाल पर एक हल्की-सी चपत लगा दी। प्यार-भरी चपत। फिर वह उसका हाथ पकड़ कर चल पड़ी। अरुण ने कहा : "किन्तु, रञ्जना! तुम्हारी कार तो उधर खड़ी है।"

रञ्जना बोली : "पड़ी रहने दो कार को। पैदल ही चलेंगे।"

वे दोनों कॉफी हाउस की ओर चल पड़े। रञ्जना ने पूछा : "फिल्म पसन्द आई?"

अरुण ने उत्तर दिया : "बहुत पसन्द आई।"

"राजकपूर कैसा लगा?"

"कौन राजकपूर?"

"लो, भइ! हद्द हो गई!! सारी रात रामायण पढ़ी, सुबह पूछने लगे, राम कौन था? फिल्म के हीरो राजकपूर को नहीं पहिचाना?"

"अच्छा, वह जो आर्टिस्ट बना हुआ था?"

"हाँ, वही। कैसा लगा?"

"वह जब-जब लैक्चर झाड़ता था तब-तब मैं तो मुँह फेर लेता था, रञ्जना! इसलिए मैंने तो एक तरह से उसको देखा ही नहीं।"

"उसकी एक्टिंग पर ध्यान नहीं दिया?"

"एक्टिंग!! बन्दर और एक्टिंग का क्या ताल्लुक?"

"क्या बक रहे हो, अरुण! राजकपूर ऐरा-गैरा एक्टर नहीं है। वह ऐरी-गैरी प्लॉट में पार्ट प्ले करने के लिए तैयार भी नहीं होता। और वह स्टेज पर आता है तो शहर में धूम मच जाती है।"

"तो इससे क्या सिद्ध होता है? इससे तो यही सिद्ध होता है कि शहर के लोग सिड़ी हैं। मुझे तो उस बन्दर की शक्ल देखकर ही कै आती थी?"

"देहाती के यही तो लक्षण होते हैं।"

"हाँ, देहाती कभी किसी सस्ते किस्म के आदमी को पसंद नहीं करता। ऐसे सस्ते आदमी को जैसा तुम्हारा वह एक्टर। उसके भीतर तो कुछ था ही नहीं। जैसे रबड़ का गुब्बारा फूला हुआ हो। बस ऐसा लगता रहा कि

यह अब फटा, अब फटा...

"नॉन-सैन्स ! यू बीस्ट !!"

"सच्ची बात कहने वाला बीस्ट कैसे हो गया ?"

"ओहो ! बड़े आए सच्ची बात कहने वाले ! अभी दो मिनट पहले तो कह रहे थे कि फिल्म बहुत पसन्द आई। और अब...

"तो क्या झूठ कह रहा था ? फिल्म तो बहुत पसन्द आई।"

"राजकपूर के सिवाय उस फिल्म में और क्या था भला ?"

"वह लड़की थी ना...नाम नहीं जानता। वही जो उस आर्टिस्ट के बच्चे को इन्सान बनाना चाहती थी ?"

"मैं समझ गई। क्या बात थी उस लड़की मे ?"

"वही जो इस देश की प्रत्येक नारी में होती है। प्रेयसी का प्यार। बहिन का स्नेह। माँ की ममता। दीन-हीन के प्रति दया-माया। वह चाहती थी कि वह आर्टिस्ट आदमी बन जाए। वह साला किसी लायक होता तो...

"उस छोरी के पाँव धोकर पी लेता !!"

"क्यूँ नहीं ? उस आर्टिस्ट के बच्चे को तो जरूर उसके पाँव धोकर पीने चाहिएँ थे। किन्तु उस साले का तो भेजा ही बिगड़ा हुआ था। लड़की बेचारी कितने प्रेम से बात करती थी। और वह ? बात-बात पर एंठा जाता था। बस हरवक्त वही रट—तुम मुझको समझती नहीं, तुम मुझको समझने की कोशिश करो ! सच, मुझे तो गुस्सा आ जाता था। और हँसी भी। जने साला कौन-सा आइन्स्टाइन का फारमूला था कि किसी की समझ में ही नहीं आया...

रञ्जना चलते-चलते रुक कर अरुण की ओर देखने लगी। वक्र दृष्टि से। मानो उसे मार बैठेगी। अरुण की आँखें उसकी आँखों से मिलते ही अरुण मुस्कराने लगा। रञ्जना से भी मुस्कराए बिना नहीं रहा गया। वह बोली : "चलो, तुम बच गए !"

अरुण ने पूछा : "काहे से बच गया ?"

"मैं तुम्हारे सिर पर एक धौल धरने वाली थी। तुमने बीच में मुस्करा

कर मेरा गुस्सा ग़लत कर दिया।"

"मेरे सिर तक हाथ पहुँचाने के लिए तो तुम्हें सीढ़ी लगानी पड़ती, रञ्जना!"

"तुम ऊँट जो ठहरे!"

"अच्छा मैं ऊँट ही सही। ज़रा बिल्ली रानी बतलाएं कि उस आर्टिस्ट के बच्चे में क्या बात थी।"

रञ्जना ने तुरन्त उत्तर नहीं दिया। वह दो क्षण तक विचार करके चलती-चलती बोली: "देखो, अरुण! तुम टैक्नीक की बात करते हो। मैं लाइफ-फिलॉसफी की। टैक्नीक तो केवल करतब ही दिखा सकती है। इन्सान के दिल को नहीं छू सकती। लाइफ-फिलॉसफी के बिना आर्ट अधूरा रह जाता है। वैसे ही जैसे सारंगी के बिना हिन्दुस्तानी साज़।"

अरुण बोला: "अच्छा, मान ली तुम्हारी बात। पर उस आर्टिस्ट के पास कौनसी लाइफ-फिलॉसफी थी? वह तो झूठ-मूठ बन रहा था।"

"तुम तो आर्टिस्ट हो नहीं। तुम क्या समझोगे?"

"तुम तो आर्टिस्ट हो। तुम समझा दो ना।"

"आर्टिस्ट को यह सारा संसार सूना-सूना लगता है। संसार के भीतर उसके लिए एक ही ठोस चीज़ रह जाती है। उसका आर्ट। उसके आर्ट को जब कोई नहीं समझता तो आर्टिस्ट असहिष्णु हो जाता है।"

"किन्तु इस आर्टिस्ट के पास कौन सा आर्ट था?"

"वाह! तुमने देखा ही नहीं।"

"देखा था, खूब देखा था। किसी कोरे कागज़ पर स्याही की एक अध-भरी दवात दे मारो। बस, बन गई पेन्टिंग। इसके सिवाय और क्या था उसके पास? वह लड़की यही तो कह रही थी कि यह दवातें फोड़ना छोड़ दो। और वह उस बेचारी का सिर ही फोड़ने को तैयार हो जाता था! वाह रे आर्टिस्ट!!"

रञ्जना ने अरुण का कान पकड़ लिया। फिर वह बोली: "अच्छा, अब यह बक-बक बन्द करो। कॉफी हाउस आ गया। वहाँ यदि किसी ने सुन लिया कि तुम राजकपूर की बुराई कर रहे हो तो लेने के देने पड़

जाएँगे।"

अरुण बोला : "इसीलिए तो मैं कहता था कहीं और चलो।"

रञ्जना ने उत्तर नहीं दिया। वे दोनों सड़क पार करके कॉफी हाउस में घुस गए। एक केबिन में बैठकर रञ्जना ने बैरे को गरम कॉफी ले आने का आर्डर दे दिया। तब अरुण बोला : "रञ्जना! तुम बार-बार लाइफ-फिलॉसफी की बात कहती रहती हो। आज बतलाओ कि यह है क्या बला।"

रञ्जना ने कहा : "लाइफ-फिलॉसफी तो सबकी एक नहीं होती। किसी की कुछ होती है, किसी की कुछ।"

"तुम अपनी लाइफ-फिलॉसफी ही बतला दो।"

"मेरी लाइफ-फिलॉसफी! क्या करोगे सुनकर! दिल बैठ जाएगा तुम्हारा।"

"बैठ जाने दो। तुम्हारी बला से।"

"बस यही बात तो मुझको बुरी लगती है। अपने बारे में बात करते-करते तुम बार-बार कह देते हो—तुम्हारी बला से! काश! मैं तुम्हारे बारे में ऐसी बेफिक्र होती!"

"मेरा क्या फिक्र है तुमको?"

"तुम मेरे लिए डूबते आदमी के लिए नौका के समान हो।"

"काहे में डूब रही हो, रञ्जना!"

"यही तो वह राज है जो मैं तुम को बतलाना नहीं चाहती। मेरी लाइफ-फिलॉसफी का राज़।"

"नहीं बतलाओगी तो तुम्हारा पेट फूल जाएगा। और फट भी जाएगा।"

रञ्जना किञ्चित् गम्भीर हो गई। बैरा कॉफी ले आया था। अपने प्याले में चम्मच चलाती हुई वह बोली : "अरुण! यह संसार देखो कितना बड़ा है। कितने आदमी हैं इसमें। किन्तु फिर भी सारे संसार में एक सूनापन भरा है। हरेक आदमी अकेला है। किसी का भी कोई संगी-साथी नहीं। अपना-अपना बोझा सब अलग-अलग ढोते रहते हैं। दुःख का बोझा। और सुख का बोझा भी। सच, सुख का बोझा भी। संवेदना का एक कण पाने

के लिए, किसी को अपना बनाने के लिए प्राण तड़प जाते हैं। किन्तु कोई किसी को अपना नहीं बना पाता। जैसे हम सबके सब पिञ्जरे में बन्द हों। और...

रञ्जना का स्वर आँसुओं से भीगने लगा था। अरुण चाहता था कि उसको चुप कर दे। किन्तु उसका साहस नहीं हुआ। रञ्जना जब इस प्रकार की बातें करने लगती थी तो वह चकरा जाता था। उसको रह-रहकर साधना का स्मरण होता था। रञ्जना के पास सब कुछ था। रूप, यौवन, धन, समाज, प्रतिष्ठा। साधना के पास कुछ भी नहीं। फिर भी रञ्जना का जीवन सूना था। और साधना का जीवन...सब प्रकार से भरापूरा। अब की बार वह गाँव गया था तो एक दिन पूजा के समय साधना ने वह गीत गाया था :

गोविन्द ! कबहूं मिले पिया मेरा !
व्याकुल प्राण धरत नहीं धीरज...

साधना के प्राण भी व्याकुल थे। किन्तु कितना सुख था उसकी व्याकुलता में। कैसा रस का सागर लहराता था। और रञ्जना के प्राण ! वे भी व्याकुल थे। किन्तु कितना दुख था उस व्याकुलता में। कैसा सीमाविहीन बीहड़। तो क्या...

रञ्जना कह रही थी : "और पिंजरा तोड़ा नहीं जाता। हम जानते हैं कि पिंजरा टूटा तो सब कुछ टूट जाएगा। बाहर तो सीमाहीन आकाश है। उसमें कहीं भी टिकने को ठौर नहीं। उड़ते-उड़ते थक कर पंख टूट जाएँगे और...

रञ्जना चुप हो गई। अरुण की कॉफी कड़वी होने लगी थी। वह रञ्जना का दुख बँटाना चाहता था। किन्तु वह तो किसी दिन भी नहीं समझ पाया था कि उसका दुख है क्या। जब-जब वह सीरियस होती थी तो ऐसी ही उखड़ी-उखड़ी बातें करने लगती थी। आज भी···

अचानक एक और लड़का केबिन में आ धँसा। ढीला कुरता और पाजामा। ऊपर से नेहरूकट वास्केट। बाल लम्बे-लम्बे। तेल की तह पर तह देकर जमाए हुए। आँखों पर मोटे काँच का चश्मा। गाल पिचके हुए।

दाँत पान खाते-खाते सड़ गए थे। पपड़ी पड़े हुए अधरोष्ठ पर अधजली सिगरेट चिपकी हुई थी। उसने रञ्जना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा : "हलो ! कॉमरेड !"

रञ्जना को उसका आना अच्छा नहीं लगा। उसने अपना हाथ नवागन्तुक की ओर नहीं बढ़ाया। किन्तु शिष्टाचार-वश उसके मुख से निकल गया : "आइए, इन्क़लाब साब !"

इन्क़लाब धम से रञ्जना के बगल में जम गया। फिर बोला : "कॉफी-हाउस के कई चक्कर लगाए। सुबह से लेकर शाम तक। किसी साले ने नहीं पूछा—शायर साब ! एक प्याला कॉफी ही पी लो। कलाम तो मुफ्त में सुन लिया। और सूखा ही टरका दिया। अब तुम दिखाई पड़ी तो जान में जान आई।"

रञ्जना ने बैरे को बुलाकर एक प्याला कॉफी का आर्डर दे दिया। इन्क़लाब ने बैरे को रोक कर कहा : "क्रीम कॉफी लाना, भैया ! और, देखना ! एक प्लेट मटन कटलेट् भी। ज़रा गरम-गरम।"

रञ्जना ने सशंक दृष्टि से अरुण की ओर देखा। अरुण माँस-मछली से चिढ़ता था। इन्क़लाब ने भी अब की बार अरुण को देख लिया। फिर उस ने पूछा : "आपकी तारीफ ?"

रञ्जना ने उत्तर दिया : "यह तो अरुण है। अरुण प्रकाश शर्मा। कैमिस्ट्री आनर्ज़ में पढ़ रहा है। फाइनल ईयर।"

इन्क़लाब बोला : "ये साब तो समझ जाएँगे कि पोयट को जिस विटामिन की अजहद जरूरत होती है वह मटन कटलेट् से ही मोहिया होता है। क्यों, शर्मा साब !"

अरुण मुस्कराने लगा। बोला कुछ नहीं। रञ्जना ने इन्क़लाब से कहा : "तो, इन्क़लाब साब ! फिर कुछ कलाम ही हो जाए।"

इन्क़लाब बोला : "कॉमरेड ! पेट में तो कुछ पड़ लेने दो। नहीं तो पेट में लोटनी लेते हुए चूहों की चीं-चीं ही बाहर निकलेगी। और तुम कहोगी कि इन्क़लाब हद दर्जे का अहमक शायर है। आखिर मुझे अपनी शोहरत का भी तो ख़याल है।"

"हमने तो सुना है कि शायर जितना ही भूखा मरता है उतना ही उस का कलाम निखरता है।"

इन्क़लाब की भौएँ तन गईं। गुर्रा कर बोला : "कॉमरेड ! तुमसे इस किस्म की बूर्जुआ बात सुनने की उम्मीद हमको हर्गिज़ नहीं थी। ये तो सरमाएदारों का बनाया हुआ सिधान्त...हाय ! हाय !! इनने जने कितने फनकारों को फेमस होने के क़ब्ल ही क़ब्र की तारीकी में दफना दिया। पढ़ी है ग्रे की एलिजी ? क्यों, शर्मा साब ! आपने पढ़ी है न ?"

अरुण ने एलिजी नहीं पढ़ी थी। पढ़ी थी तो याद नहीं थी। साहित्य का उसे कभी शौक नहीं रहा था। वह तो गणित तथा साइंस के फॉरमूले ही सुलझाता रहता था। इसलिए उसने सिर हिला दिया, और इन्क़लाब ने सारे इतिहास में भरी व्यथा को अपने मुख पर संचित करके, अपने एक हाथ को नचाकर, तरन्नुम में कहा : "फुल मैनी ए जैम ...क्या समझे ? फुल मैनी ए जैम...ज़रा ग़ौर फरमाइये ! फुल मैनी ए जैम ऑफ प्योरेस्ट रे सिरीन...ऑफ...अ...अ ..प्योरेस्ट रे...

बैरा आकर इन्क़लाब के सामने छुरी-काँटा और नमक-मिर्च की शीशियाँ सजाने लगा। इन्क़लाब पोयम पढ़ना भूल गया। वह बैरे से बोला : "अरे भई ! ज़रा दो टोस्ट भी लेते आना। ताज़ा रोटी के। करारे-करारे। और ठण्डे न होने पाएँ !"

बैरे ने गर्दन हिलाकर आर्डर ले लिया। इन्क़लाब ने अरुण से कहा : "तो, शर्मा साब ! एक सिगरेट अता फरमाइये ! सुबह से अधजले ठूँठ पी रहा हूँ।"

अरुण ने कह दिया कि वह सिगरेट नहीं पीता। तब इन्क़लाब ने रञ्जना से कहा : "तो फिर तुम ही एक सिगरेट बाहर कर दो, कॉमरेड !'

रञ्जना ने घबरा कर उत्तर दिया : 'मैं !! मेरे पास सिगरेट का क्या काम ?"

"कब से पीना छोड़ दिया, कॉमरेड !"

"मैं पीती ही कब थी ?"

इन्क़लाब ने एक बार रञ्जना की ओर देखा। फिर अरुण की ओर।

और तब वह हँसकर बोला : "मैं समझ गया, कॉमरेड ! इब्तदाए इश्क़ है...हाँ, तो मैं वह एलिजी अर्ज कर रहा था। क्या कह रहा था ?...हाँ, फुल मैनी ए जैम...यानी के फुल...यानी के ऊपर तक लबरेज ! जैसे मय से पैमाना लबरेज होता है। कॉमरेड ! वो भी कोई जमाना था जब पैमाना वाक़ई लबरेज़ हुआ करता। अब तो साले बिसाती की दुकान पर बूँद-बूँद बिकती है। मय माँगो तो साले टीन की डिबिया में मापने बैठ जाते हैं। मैं कहता हूँ, बे उल्टा भी दे बोतल, सारी नहीं पी जाऊँ तो अपने बाप का बेटा नहीं। और साक़ी कहाँ रहे ? जूल बॉक्स में चवन्नी अड़ा दो और कबीरदासजी के दोहे सुन लो—जब चिड़िया चुग गई खेत ...अ। मैं कहता हूँ, बे होने दे कोई ठुमरी—फूलगैंदवाँ न मारो...

बैरा खाने-पीने का सामान ले आया। और इन्क़लाब अपनी ठुमरी को बीच में ही भूलकर कटलेट् पर टूट पड़ा।

रञ्जना ने अरुण से कहा : "अरुण ! क्लास में जिस दिन प्रोफेसर ने ग्रे की एलिजी सुनाई थी उस दिन मेरी आँखों से आँसुओं की धार बह निकली थी। आर्टिस्टों के बेबी-मरडर की बात सोचकर मुझे संसार के सारे सुखी लोगों से चिढ़ हो गई थी। इन्होंने...मैंने उस दिन सांझ के झुट-पुटे में एक कविता लिखी थी—जग के सुखी प्राणियों ! मेरी आँखों से ओझल हो जाओ...

इन्क़लाब का मुँह कटलेट् और टोस्ट से भरा हुआ था। किन्तु उससे यह नहीं देखा गया कि उसके विद्यमान रहते कविता कोई और सुनाने लग जाए। वह अपने हाथ के छुरी-काँटा ऊपर उठा कर, भरे हुए मुँह से बोला : "इस अनवान की नज्म सुनना चाहते हैं तो मुझसे सुनिए, जनाब ! एक दिन आपके शायर साब इण्डिया गेट के पास चहलक़दमी कर रहे थे। फिरंगी लौण्डा एक हुस्ने बेमिसाल परीजमाल को बगल में दबाकर इस तरह शायर साब के आगे से निकल गया जैसे उनका वजूद ही इस सरे ज़मीं पर नहीं हो। और शायर के जिगर में हज़ारहा जख्म तरो-ताजा हो गए। जमाने ने किए थे वे जख्म। एक मुद्दत से। तो जख्म ताजा हो गए... ताजा क्या हो गए, यकलख़्त तड़प उठे, जनाब ! और आप जानते हैं शायर

साब ने क्या फरमाया ?"

इन्क़लाब ने एक बार अरुण की ओर तथा एक बार रञ्जना की ओर देखा। निर्निमेष नयनों से। उन नयनों में न जाने क्या था। अरुण ने मुँह फेर लिया। किन्तु रञ्जना ने पूछा : "क्या फरमाया, इन्क़लाब साब !"

इन्क़लाब ने छुरी वाला हाथ सर्र-से सीधा कर दिया। अपना एक पाँव धरती पर दे मारा। और फिर वह तरन्नुम में गाने लगा :

"ए ज़मीं !...ए ज़मीं !

"ए ज़ालिम ज़मीं ! तू फट जा !

"ए आस्माँ !...ए आस्माँ !

"ए बे-नियाज़ आस्माँ !

"तू बिजलियाँ गिरा दे !

"तू ...ऊ-ऊ बिजलियाँ...याँ...आँ...

रञ्जना ने दाद दी : "हए ! हए ! फिर क्या ?"

इन्क़लाब ने शेर पढ़ा :

"हुस्ने बे-मिसाल फिरँगी को दे दिया !

"हुस्ने बे-मिसाल...हुस्ने बे-मिसाल...अ...

"हुस्ने बे-मिसाल फिरंगी को दे दिया !

"और हुस्न का शिकार...हुस्न का शिकार...

"और हुस्न का शिकार किसी और को किया !"

रञ्जना फड़क उठी : "वा ! वा !! फिर क्या ?"

किन्तु इन्क़लाब तो अपने सीने को दोनों हाथों से पकड़कर बैठा था। उसके मुख पर ऐसा भाव था कि वह उसी क्षण तड़पकर साँस तोड़ देगा। अरुण ने घबरा कर पूछा : "क्या बात है, शायर साब !"

रञ्जना ने कहा : "इन्क़लाब साब ! आपका यह कलाम बे-नुमा है। यह तो फौरन कहीं शायै होना चाहिए...या शायै हो चुका है ?"

इन्क़लाब एक ठण्डी आह भर कर बोला : "शायै ! मेरा कलाम !! तुम कह क्या रही हो, कॉमरेड ! तुम क्या जमाने की चाल से वाक़िफ नहीं ? मैं बारह बरस का था तब मेरा पहला दीवान मुकम्मल हो चुका

था। वो वो नायाब नज़्में थीं के जिनकी मिसाल उर्दू अदब में तो क्या, दुनिया के अदब में मिलना मुहाल है। लेकिन हश्र क्या हुआ ?"

"क्या हश्र हुआ ?"

"महीनों दीवान को बग़ल में दबाकर दूकान-दूकान पर घूमा। पर शायै करना तो दर किनार, किसी साले ने एक शेर पढ़कर दूसरा शेर पढ़ने की जहमत नहीं उठाई।"

"किसी की समझ में ही नहीं आए होंगे आपके शेर ?"

"एक हमदर्द की समझ में आए थे। वो बोले—आप क्या इस ज़माने के इन्सान हैं, शायर साब! आपका ज़माना आने में अभी दो सौ साल लगेंगे। तब तक आप अपने शेर शायै करने का खयाल तर्क कर दीजिए।"

"शेर शायै करने का, या शेर कहने का ?"

"शेर कहना कैसे तर्क कर दूँ, कॉमरेड! शेर न कहूँ तो जीऊँ किस तरह? औरों की ज़िन्दगी में हज़ारहा नेमतें हैं? साक़ी है, साग़र है, पैमाना है। लेकिन मेरी ज़िन्दगी में तो ले दे के ये मुख़नगरी है...शेर कहे जाता हूँ...और जले जाता हूँ...

"अब तक तो आपके कई दीवान मुकम्मल हो चुके होंगे ?"

"सतरह दीवान मुकम्मल हैं! सतरह!! लेकिन मैं तो टागोर की मानिंद किसी ज़मींदार का नूरे-नज़र नहीं। वरना एक क्या, दस दस नोबल प्राइज़ मेरे क़दमों को चूमते।"

"हाय! ज़माने की बे-नियाज़ी!!"

"ज़माना भी बदलेगा, कॉमरेड! ज़माना भी बदलेगा। ज़रूर बदलेगा। हम रहें न रहें, हमारा कलाम तो तावक़्ते महशर रहेगा। और हमारे मक़बरे पर आने वाले ज़माने के शायस्ता लोग आए दिन ज़ियारत के लिए आया करेंगे। शहीदों की चिताओं पर...क्या समझे? शहीदों की चिताओं पर...ज़रा ग़ौर फ़रमाइए...

"मक़बरा या चिता ?"

"चिता तो मैं ख़ुद हूँ, कॉमरेड! धुँआधार जल रहा हूँ। और ज़माने को भी जलाकर ख़ाक कर दूँगा...

अरुण से नहीं रहा गया। वह कह बैठा : "थोड़े दिन ठहर जाइए, शायर साब ! मैं कैमिस्ट्री के एक फॉरमूले पर काम कर रहा हूँ। वह हल हो जाए तो...

इन्क़लाब ने पूछा : "तो क्या इन्सान की समसिया हल हो जाएगी ?"

"समस्या क्या है ?"

"जी चाहता है ..जरा ग़ौर फरमाइए...जी चाहता है...जरा मुलाहज़ा कीजिए...जी चाहता है फिर वही फ़ुरसत के रात दिन...

रंजना ने कहा : "इन्क़लाब साब ! वैसी फ़ुरसत तो न जाने आपको कब मिलेगी। अभी तो आपकी कॉफी बरफ हुई जा रही है, जनाब ! पहिले इसे पी लीजे !"

इन्क़लाब बोला : "कॉफी तो अब और मँगवाइए, कॉमरेड !"

रंजना ने बैरा को बुलाकर एक कॉफी का आर्डर और दे दिया। बिल ले आने का आर्डर भी। इन्क़लाब पहले प्याले को तलछट तक पीकर होंठ चाट रहा था।

बिल चुका कर रंजना बोली : "हमको कहीं जाना है, इन्क़लाब साब !"

इन्क़लाब अरुण की ओर देखकर बोला : "यार, तुम बड़े ख़ुश-क़िस्मत इन्सान हो। शेर हमने सुनाए, और शीरनी तुम्हारे हिस्से आई।"

रंजना ने हँसकर कहा : "आपका लाख-लाख शुक्रिया। इन्क़लाब साब ! आपने मुझको शीरनी तो कहा !"

"तो फिर धर दो अठन्नी इसी बात पर। शायर साब सिगरेट पीएँगे। गोल्ड फ्लेक। चार मीनार पीते-पीते कलेजा साला स्याह हो गया।"

अरुण ने अपनी जेब से एक रुपया निकाल कर इन्क़लाब के सामने रख दिया। और फिर वे दोनों; रंजना और अरुण, केबिन के बाहर निकल आए।

: ८ :

अरुण ने मैट्रिक पास किया तो वह जीतपुर में रह कर ही शास्त्रीजी

से संस्कृत पढ़ना चाहता था। किन्तु साधना नहीं मानी वह बात। उसने हठ की कि अरुण को दिल्ली जाकर किसी कॉलेज में पढ़ना चाहिए। अरुण साधना का अनुरोध अमान्य नहीं कर पाया। और दिल्ली में पढ़ने के लिए प्रस्तुत हो गया।

अरुण जब आखिरी बार जीतपुर छोड़कर दिल्ली जाने लगा तो साधना ने उससे कहा : "विद्याध्ययन एक प्रकार की तपस्या है, अरुण ! तपस्या में विघ्न नही पड़ना चाहिए। तुम अपना चित्त सब ओर से खींच-कर पढ़ाई में ही लगाना। चित्त चंचल न होने पाए।"

अरुण बोला : "किन्तु मैं तुझको कैसे भुलाऊँगा, साधना !"

"मुझे याद रखने के साथ-साथ मेरी बात को भी याद रखना।"

"और मैं आए महीने आकर तुझसे मिल जाऊँगा।"

"नहीं, एक साल में एक बार ! केवल एक बार !"

"कॉलिज में तो बहुत छुट्टियाँ होती हैं, साधना !"

"वे सब छुट्टियाँ तुम अपने गाँव में जाकर बिताना। तुम्हारे घर वालों का जो अधिकार तुम पर है, उसे तुम किसी दिन भी अस्वीकार मत करना, अरुण ! मानोगे ना मेरी बात ?"

अरुण चुप रहा। उसकी आँखों में आंसू भर आए थे। साधना ने कहा : "चित्त चंचल हो तो श्रीकृष्ण की शरण लेना !"

अरुण गद्‌गद् कण्ठ से बोला : "मुझे तो भगवान् की शरण लेनी भी नहीं आती। तूने सिखलाया ही नहीं। मेरी ओर से तुझे ही प्रार्थना करनी पड़ेगी।"

"अच्छा, मैं ही प्रार्थना करूँगी। चित्त जब चंचल हो तो मुझ को पत्र लिखना। मैं प्रार्थना करूँगी।"

"चित्त चंचल न हो तो पत्र नहीं लिखूँ ?"

साधना अरुण को देख कर मुस्कराने लगी। अरुण ने कहा : "बोल ना, निठुर कहीं की !"

साधना बोली : "अच्छा, बाबा ! जब जी चाहे तब लिखना। किन्तु उत्तर मैं अपने हिसाब से दूँगी।"

"तब क्या लाभ होगा ? मुझे पत्र लिखने का लोभ नहीं है, साधना ! मुझे तो पत्र पाने का लोभ है। तेरे पत्र।"

साधना एक क्षण मौन रही। फिर बोली : "अच्छा ! तुम जब भी लिखोगे तभी उत्तर दूँगी।"

अरुण प्रसन्न होकर दिल्ली चला गया। और शहर के एक कॉलिज में भरती हो गया। उसने कैमिस्ट्री में खूब नम्बर लिए थे। इसलिए कैमिस्ट्री आनर्ज़ आसानी से मिल गया।

किन्तु शहर में अरुण का जी नहीं लगा। दिल्ली जैसा बड़ा शहर उसके लिए सर्वथा नवीन था। इसके पूर्व वह दो-चार बार दिल्ली आया था अवश्य। किन्तु एकाध दिन के लिए ही। गाँव के किसी सम्बन्धी के घर ठहरा था। शहर का समाज, शहर का शिष्टाचार, शहर की बोल-चाल—सब उसके लिए एकबारगी अपरिचित थे। कुछ-कुछ अटपटे भी। अरुण शहर के लोगों से घबराता था। दिल्ली आने के पूर्व वह बार-बार सोचता रहा था कि वह किस प्रकार शहर की भाषा बोलेगा, किस प्रकार शहर की वेष-भूषा धारण करेगा, किस प्रकार...

दिल्ली में आने के उपरान्त महीना भर तक वह प्रायः नित्य ही रो पड़ता था। अकेला बैठकर। उसको साधना की याद आती थी। शास्त्री जी और सरस्वती चाची का याद भी। मामा-मामी का सरल स्नेह याद आता था। नाना-नानी का दुलार भी। वह नित्य ही साधना को पत्र लिखकर हठ करने लगा कि वह दिल्ली में नहीं रहेगा। किन्तु साधना ने उसे स्वीकृति नहीं दी। वह उसको पुराणों के तपस्वियों की कथायें लिख भेजती थी। और यही कहती रहती थी कि नए समाज में नए साथी ढूँढो।

अरुण साथी ढूँढ़ने निकला। होस्टल में उसके कमरे का दूसरा लड़का भी किसी गाँव का रहने वाला था। वह उसको एक समाज में ले जाने लगा। कॉलेज में पढ़ने वाले ग्रमीण लड़कों की समाज में। किन्तु अरुण का जी उनमें एक दिन भी नहीं लगा। वे खाने-पीने की बातें करते रहते थे। कपड़े-लत्ते की बातें। उनमें से प्रत्येक की आकांक्षा यही थी वह अपने ऊपर अंकित देहात की छाप को धो-पोंछ डाले। और शहर का छैला बन

जाए। और शहर की किसी छोरी से...किसी लैला से दिल मिलाए। जब भी कॉलेज की किसी लड़की का प्रसंग आता था तो यह समाज बहुत ही भद्दी भाषा का प्रयोग करता था। और अरुण आपाद-मस्तक सिहर उठता था। उसके लिए संसार की प्रत्येक लड़की साधना का प्रतिरूप थी। वैसी ही पवित्र। वैसी ही...वैसी ही पूज्य। अरुण ने धीरे-धीरे उस समाज में उठना-बैठना बन्द कर दिया।

तब वह शहर के लड़कों में उठने-बैठने का प्रयत्न करने लगा। कॉलेज के लॉन में इधर-उधर बिखरी रहती थीं कई गोष्ठियाँ। अरुण किसी सहपाठी को पहिचान कर किसी मण्डली में जा बैठता था। वे अधिकतर किसी खेल-तमाशे की बातें करते रहते थे। एक दिन हॉकी के मैच का किस्सा छिड़ा हुआ था। एक लड़का बोला : "यार ! हमारे कॉलेज को तो उस साले चन्दर ने पिटवा दिया। दे साले फाउल पे फाउल ! नहीं तो हमारा कॉलेज क्या हारने वाला था ?"

एक और लड़का बोला : "बे मैं तो पहले ही कहता था, इन इलाके के छोरों को फस्ट इलैवन में मत लो। लेकिन हमारी बात किसी ने सुनी ही नहीं।"

एक तीसरा लड़का कहने लगा : "यार ! इलाके के छोरे पतलून पहनना नहीं जानते, पर खेलते तो खूब हैं।"

पहला बोला : "बस बे, रहने दे ! इलाके के छोरे को हॉकी दे दो। बस उसकी फिरकी बना देता है। उसको खयाल ही नहीं रहता कि हाथ में हॉकी है। वह तो यही समझता है कि गाँव के मैदान में खुलिया का खेल हो रहा है।"

अरुण से नहीं रहा गया। वह बोला : "ऐसी क्या बात है, जनाब ! हमारे हाई स्कूल की हॉकी-टीम सारे ज़िले में मशहूर थी। फाउल तो किसी ने कभी ही किया हो।"

दूसरा लड़का अपने स्वर को भारी बनाकर बोला : "तू कुणसे गाम का है, छोरा !"

अरुण झेंप गया। तब पहले ने उसके सिर पर चपत लगाकर कहा :

"बे साले ! पाताल फोड़कर निकला है क्या ? बताता क्यूँ नहीं गाँव का नाँव ?"

अरुण उठ खड़ा हुआ। दूसरे लड़के ने भी उठकर उसके कोट के कॉलर पकड़ लिए। फिर वह बोला : "यो कोट कित सिलायो, छोरा !"

पहला लड़का बोला : "बे जाटनी से सिलवाया है।"

दूसरे लड़के ने अरुण से पूछा : "तूँ जाट सै के, छोरा !"

अरुण ने अकड़ कर कहा : "हाँ, हूँ तो !"

"कोट कित बरणाया ?"

"अपने गाँव में।"

"कोल्हू में पेल के ?"

"नहीं, दरजी से।"

"तेरे गाम मैं दरजी भी सै के ?"

"है क्यूं नहीं। कई दर्जी हैं।"

"गाम के दरजी और मोची में के फरक हो सै, छोरा !"

अरुण मुँह बाए उसकी ओर देखता रहा। बात उसकी समझ में नहीं आई। तब उस लड़के ने गोष्ठी में बैठे एक अन्य लड़के से कहा : "बे फिरकी के ! सुना तेरा अब्बा रेलवाई में अफसर है ?"

उस लड़के ने उत्तर दिया : "हाँ, है तो। लेकिन क्यूं ?"

"बे साले ! उससे कहता क्यूँ नहीं रेल के टिकट तमीज़ से काटे। इलाकों के छोरों से शहर भर गया। ऐसे-ऐसे नमूने आ जाते हैं। गाँव के मोची ने कम्बल काटकर साले के गले में अटका दिया। और ये कहता है के कोट है। पहनकर चला आया दिल्ली के कॉलेज में...खटा...खट...खटा...खट...

वह लड़का चार क़दम चलकर नक़ल उतारने लगा। गोष्ठी में से किसी ने कहा : "बे देखता नहीं इसके पाँव में चप्पल है !"

वह लड़का बोला : "यही तो नहीं देखा जाता ! कैसा ज़माना आया है ! ये साले जाट-फाट चमरौधे जूत पहना करते। भैंसे की खाल के। अब लड़ाई के कारण सालों के घर में टकसाल खुल गई। चप्पल का

बाजार गिराँ कर दिया। इनके पाँव की तरफ देखो तो भरम होता है के मिस शहीदा बानू जा रही है...छुम...छुन...छुम...छनन..."

वह लड़का मटक-मटक कर किसी लड़की की नकल उतारने लगा। गोष्ठी में से कोई बोला : "बे शहीदा के पाँव में क्या पाजेब हैं ? साले ने किसी पनवाड़ी की लौंडिया को देख लिया। और समझ बैठा के शहीदा बानू है।"

और फिर वही लड़कियों की बातें। वही भद्दापन। अरुण फिर सिहर उठा। शहीदा बानू कोई भी हो, वह थी तो साधना की जात की। वह चुपचाप चला आया। और फिर कभी किसी उस प्रकार की गोष्ठी में भाग लेने नहीं गया।

कॉलिज के लड़कों का एक और वर्ग भी था। हाई-ब्रो कहलाने वाला वर्ग। इस वर्ग के लड़के कॉलिज के कैफे में बैठकर चाय और कॉफी का सेवन करते हुए शिल्प, साहित्य तथा राजनीति इत्यादि पर बातें करते रहते थे। अरुण एक सहपाठी के साथ जाकर एक दिन उस वर्ग को भी देख आया। नन्दलाल बोस की चित्रकला को लेकर चर्चा चल रही थी। अरुण ने कभी उस चित्रकार का नाम नहीं सुना था। उसको चित्रकला के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं था। इस विषय में कुछ सीखने के लिए वह चर्चा को बड़े ध्यान से सुनने लगा।

एक लड़का कह रहा था : "बे जब देखो तब साला गाँव की गोरी पेन्ट करता रहता है। गोरी की कमर ऐसी बनाता है जैसे भिरड़ की। और कूल्हे के ऊपर टिका देता है आधे मन पानी का मटका। मैं कहता हूँ, बे भूतनी के ! कहीं जाकर बारह मन की धोबन क्यों नहीं बनाता ? साले ! इस गोरी की कमर टूट गई तो तेरे आर्ट को क्या कुत्ते चाटेंगे ?"

सारे लड़के अट्टहास कर उठे। वह लड़का तृप्ति का अनुभव करता हुआ आगे बढ़ा : "मैं कहता हूँ, बे पापड़ वाली के ! ज़रा शहर की शोख़ जवानियाँ भी तो देख ले। तेरे साले बंगाल में शहर नहीं हों तो साले दिल्ली में आ जा। ज़रा हमारे कॉलिज में ही एक बार आकर देख ले। एक से एक लाजवाब छोरी है यहाँ। और छोरियों की कमर का माप भी ले

कर देख ले। गाँव की गोरी से एकाध मिलीमीटर कम ही उतरेगी।"

एक अन्य लड़के ने कहा : "पर, जनाबे मन! कॉलिज की छोरी के पास मटका कहाँ है? और नन्दलाल बोस को तो मटका चाहिए। स्कूल के ड्राइंग मास्टर ने साले को एक ही पाठ पढ़ाया था—बे और कुछ बनइयो न बनइयो, मटका ज़रूर बनइयो! तब से बेटा मटके ही मटके बना रहा है। कभी सिर पर मटका। कभी कूल्हे पर मटका...

एक तीसरा लड़का बीच में ही बोल उठा : "बे अपन उस दिन आर्ट गैलरी में गए थे। हमने देखा नन्दलाल बोस के बुद्धा ने भी अपने सिर पर मटका धर रक्खा है। हमने किसी से पूछा, बे बुद्धाप निहारा था क्या? और उनने तो हमको ही बेवकूफ बतला दिया! कहने लगे, बे ये मटका नहीं, बुद्धा की जटा है, जटा...

एक तीसरा लड़का बोला : "बे यही तो मैं कहता हूँ के, बेटा! बाबा आदम के ज़माने से बाहर निकल कर देख। जरा एक बार पैरिस होइया। फिर देख आर्ट क्या होता है। आर्ट सीखने के लिए तो पैरिस जाना पड़ता है, जनाब! क्या समझे? वो वो शहर है जहाँ पानी माँगो तो शैम्पेन ऑफर होती है।"

पहला लड़का बोला : "बे पैरिस जाने की क्या जरूरत है? अब तो अपना ये कॉलिज ही पैरिस हुआ जा रिआ है। हम तो भइ इस कॉलिज की छोरियों पर कुरबान हैं। यहाँ वो एक से एक आला चीज मिलती है...हए, हए...

लड़के की जबान चटखारे लेने लगी। और उसकी आँखें बंद हो गईं। तब एक चौथा लड़का, जो अब तक चुप बैठा था, उसके सिर पर एक चपत लगाकर बोला : "बे फिरकी के! साले, कॉलिज की सारी छोरियों का नाम क्यूँ लेता है? किसी और के लिए भी कुछ छोड़ेगा कि नहीं? तू मिस माथुर के पीछे डोल। और किसी की तरफ देखा तो...

पहला लड़का आँख खोलकर बोला : "नन्हे! दस लैटर लिख चुका उस कायस्थ की छोरी को। घर के नौकर से पूछा था के बे हमारे लैटर का जवाब क्यूँ नहीं आता? वो कहने लगा, बाबू साब! आपकी चिट्ठी तो

बिना खुली ही रद्दी की टोकरी में जा पहुँचती है। अब उस बेवफा को ..

तीसरा लड़का बोला : "भइ, चिट्ठी का जवाब तो उनको मिलता है जो साले चिट्ठी लिखना जानें। कागज़ और स्याही का खरच तो कोई भी...

पहिले लड़के ने कहा : "बे बैस्ट लव-लैटर्ज़ में से नक़ल की थी चिट्ठी। वही जो कीट्स् ने अपनी माशूका को लिखी थी। हम क्या कच्ची गोलियाँ खेले हैं? अपन ने तो इसी जनून में एक ज़िन्दगी बिता दी। और यह कायस्थ की लौण्डिया क्या मेरी पहली माशूक़ा है...

अरुण उठकर चल दिया। बात कहीं से उठे, उसका अन्त एक ही होना था। लड़कों के हँमी-मज़ाक से अरुण को चिढ़ नहीं थी। अच्छा ही लगता था उसको वह हँमी-मज़ाक। उसका अपना मज़ाक उड़ता था तब भी उसको अच्छा लगता था। किन्तु किसी भी प्रकार के ग्राम्य मनो-भाव अथवा भाषा से अरुण कोसों दूर भागता था। उसके अन्तर में साक्षीभूत साधना उसको तुरन्त चेता देती थी। और वह साधना की चेतावनी की अवहेलना किसी दिन भी नहीं कर पाया।

धीरे-धीरे अरुण अकेला रह गया। होस्टल का कमरा भी उसको छोड़ देना पड़ा। उसका पार्टनर ग्रामीण लड़कों के समाज का सदस्य था। और वह समाज बहुत बार उसके कमरे में आकर अखाड़ा जमा लेता था। उनके प्रति असहिष्णु नहीं था अरुण। किन्तु उसकी अपनी एक असमर्थता थी। वह न अपनी बात कह पाता था, न उनकी सुन पाता था। और वह कुछ अन्य काम भी नहीं कर पाता था। अखाड़ा उखड़ जाने के उपरान्त भी उसका मन कुछ उचाट-सा हो जाता था।

अरुण ने यूनिवर्सिटी के पास कमलानगर में एक कमरा किराए पर ले लिया। खाना वह एक ढाबे में खा लेता था। और वह सब ओर से मन हटाकर अपने अध्ययन में डूब गया। साइंस का छात्र होने के कारण उसका अपेक्षाकृत अधिक समय क्लास-रूम और लेबॉरेटरी में बीत जाता था। शेष समय में वह घूमने निकल जाता था। दूर-दूर तक। अथवा यूनिवर्सिटी का पुस्तकालय छानता रहता था। पुस्तकालय बन्द होने लगता था तब तक।

साधना के पत्र उसके सतत् सहचर थे। प्रत्येक पत्र में उसके किसी नए प्रश्न का उत्तर रहता था। साधना अनवरत किसी-न-किसी शास्त्र का अध्ययन एवं मनन करती रहती थी। और वह अपनी बुद्धि के समस्त तर्क-वितर्क से अरुण को अवगत करती रहती थी। साधना भाव-प्रवण होकर भी प्रखर-बुद्धि थी। वह अपनी भावना के प्रत्येक उन्मेष को बुद्धि द्वारा बाँध लेती थी। बुद्धि के प्रत्येक स्पन्दन को भावना द्वारा भिगो भी देती थी। और अरुण उसका आराध्य-देव था। वह अरुण में श्रीकृष्ण की भावना किए बैठी थी।

अरुण ने बहुत बार हठ किया कि वह बीच-बीच में जीतपुर जाकर साधना से मिलेगा। किन्तु साधना ने अनुमति नहीं दी। वह साल में केवल एक बार ही जीतपुर जा सकता था। दशहरे की छुट्टियों में। अन्यान्य छुट्टियाँ वह या तो अपने गाँव जाकर व्यतीत करता था, या दिल्ली में ही रहकर।

इस प्रकार पूरे दो साल बीत गए। इस बीच वह केवल दो बार जीतपुर जाकर साधना से मिल पाया। साधना ने नित्यप्रति उसकी पूजा की। उसको अपने भाव-भरे स्तोत्र तथा भजन सुनाए। उसको रुलाया और रोमाञ्चित किया। और फिर वही पुराना अनुरोध दोहराकर उसे विदा कर दिया। प्रसन्न मुख से। हृदय व्यथित हो उठा तब भी। साधना ने एक बार भी किसी दुर्बलता का प्रदर्शन नहीं किया। न अरुण की किसी दुर्बलता को ही कभी प्रश्रय दिया।

तब एक दिन वह अपने बी० ए० फाइनल की क्लास में बैठा अंग्रेजी के प्रोफेसर का लैक्चर सुन रहा था। पाठ्य विषय था हार्डी का कोई उपन्यास। प्रोफेसर ने हार्डी की आधारभूत आस्था का उल्लेख करते हुए कहा : "हार्डी किसी ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता था। वह कहता था कि इस संसार का स्रष्टा कोई नहीं। और यदि कोई है तो वह क्रूर है, दुष्ट है, दुराचारी है...

अरुण बीच में ही उठकर खड़ा हो गया। प्रोफेसर की वाग्धारा रुकी। उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टि से अरुण की ओर देखा। अरुण आपादमस्तक

लाल हो उठा। इसके पूर्व उसने कभी भी क्लास में मुख नहीं खोला था। प्रोफेसर ने पूछा : "क्या बात है?"

अरुण ने उत्तर दिया : "सर! यह बात समझ में नहीं आई। भगवान् को कोई मनुष्य किस प्रकार ऐसे अपशब्द कह सकता है?"

"भगवान् क्या चीज़ है?"

अरुण से उत्तर नहीं बन पड़ा। प्रोफेसर ने फिर पूछा : "तुमने भगवान् को देखा है?"

अरुण ने उत्तर दिया : "मैं भगवान् को क्या देखूँगा, सर! उन्हे तो महात्मा लोग ही देख पाते है।"

प्रोफेसर की मुखमुद्रा गम्भीर हो गई। वे सारी क्लास को सम्बोधित करके बोले : "ये सब पुराने ज़माने के अन्धविश्वास है। आधुनिक युग के मनीषी कहते है कि भगवान् मर गया, मनुष्य अब मुक्त है। मनुष्य ने अब अपने संसार पर अधिकार पा लिया है। अब मनुष्य अपने संसार में सत्यं, शिवं, सुन्दरं की स्थापना करने के लिए सर्वथा स्वतन्त्र है।"

अरुण ने कहा : "तब तो, सर! संसार में प्रलय आ जाएगी।"

'क्यों? प्रलय कैसे आ जाएगी?"

"मनुष्य तो अपनी वासनाओं का कठपुतला है। भगवान् की भक्ति करके ही वह अपनी वासनाओं पर विजय पाता है। तब उसमें धर्मबुद्धि का उदय होता है। और धर्मबुद्धि से ही वह संसार का कल्याण कर सकता है। अन्यथा नहीं।"

'धर्मबुद्धि क्या है?"

"मनुष्य जब अपने अहंभाव का नाश कर देता है और अन्य प्राणियों के सुख के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, तब उसकी बुद्धि धर्मबुद्धि बन जाती है।"

"अहंभाव का नाश हो जाने पर मनुष्य में रह ही क्या जाता है? अहंभाव का नाश अर्थात् आत्मघात।"

'नहीं, सर! आत्मघात नहीं, आत्मसाक्षात्कार कहिए। अहंभाव ही तो आत्मा पर पड़ा हुआ पर्दा है। वह पर्दा उठते ही मनुष्य अपने-आपको

देख लेता है।"

प्रोफेसर एक क्षण विचारमग्न हो गए। फिर उन्होंने पूछा : "ये सब बातें तुमने कहाँ से सीखीं?"

अरुण के मुख से अनायास ही निकल गया : "साधना से, सर!"

"कौनसी साधना करते हो तुम?"

"जी नहीं, साधना तो मेरे गाँव की एक लड़की का नाम है।"

सारी क्लास ठहाका मारकर हँस पड़ी। प्रोफेसर भी मुस्कराने लगे। क्लास के एक कोने में से किसी ने कह दिया : "बैठ जा बे, जाटनी के चेले!"

अरुण हतप्रभ-सा होकर बैठ गया। प्रोफेसर ने फिर उससे कुछ नहीं पूछा। और शेष रहे लैक्चर में अरुण का मन भी उचाट हो गया। उसका मन रह-रहकर उसको धिक्कार रहा था : "तुमने सबके सामने साधना का नाम क्यों लिया? क्यों लिया...

क्लास पूरी होने पर अरुण बाहर निकला तो वह कहीं जाकर मुँह छिपा लेना चाहता था। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि सारे लड़के उसकी ओर देख रहे हैं। और वे मन-ही-मन हँस रहे हैं। किन्तु वह द्रुतपद कहीं भाग जाता उसके पूर्व ही एक सहपाठी ने उसका हाथ पकड़ लिया। अरुण उसको शक्ल से ही पहिचानता था। लड़के ने कहा : "मेरा नाम रामेश्वर है। रामेश्वर पुरी। तुम्हारा नाम?"

अरुण ने उत्तर दिया : "अरुण। अरुण प्रकाश शर्मा।"

"यार! तुम हो तो बड़े विश्वास वाले आदमी!"

अरुण मौन रहा। वह सोच ही नहीं पाया कि क्या कहे। रामेश्वर बोला : "देखो, अरुण! हम लोगों का एक क्लब है। हम उसमें आए हफ्ते इकट्ठे होकर वाद-विवाद करते हैं। दस-बारह लड़के हैं। तीन-चार लड़कियाँ। तुम भी आया करो न? तुम्हारी बातें तो सुनने लायक हैं। आजकल ऐसी बातें कोई नहीं कहता। कॉलेज में तो बिल्कुल नहीं।"

अरुण ने कहा : "मैं तो वाद-विवाद करना नहीं जानता। कभी किया ही नहीं।"

"तो न सही। वहाँ पर जो वाद-विवाद होता है उसको सुन ही लेना। शायद तुम्हारा भी जी कर आए कुछ कहने के लिए। वहाँ कोई पाबन्दी नहीं है। जो चाहे सो बोले, जो चाहे सो नहीं बोले। लेकिन वहाँ आते हैं सब सीरियस किस्म के लोग। आओगे ना?"

"कब होगी अगली मीटिंग?"

"इसी सैटर्डे को। साँझ के चार बजे। मैं तुमको यहाँ से अपने साथ ले जाऊँगा। क्लब मेरे अपने घर पर ही है।"

अरुण मान गया। और शनिवार को वह रामेश्वर के साथ बारह-खम्बा रोड की एक कोठी पर जा पहुँचा। एक बड़े-से सुसज्जित कमरे में पन्द्रह-बीस व्यक्ति बैठे थे। तीन-चार लड़कियाँ थीं, शेष सब लड़के। नवा-गन्तुक अरुण का सब के साथ परिचय कराया गया। अरुण उनमें से किसी को भी निकट से नहीं जानता था।

वाद-विवाद का विषय वही था: भगवान् मर गया, मनुष्य अब मुक्त है। रामेश्वर ने ही जान-बूझकर वह विषय रखा था। अरुण का आह्वान करने के आशय से। और अरुण अनायास ही वाद-विवाद में भाग लेने लगा।

वाद-विवाद करने का अभ्यास नहीं था अरुण को। मौन रहकर सबकी बात सुन लेना ही उसका स्वभाव था। वह समस्त खण्डन-मण्डन अपने अन्तर में ही कर लिया करता। वह क्या, उसके अन्तर में बैठी साधना करती थी समस्त खण्डन-मण्डन। और आज की गोष्ठी में साधना ने सबको चमत्कृत कर दिया। अरुण ने साइंस के विषय में जो मौलिक ग्रन्थ पढ़े एवं हृदयंगम किए थे वे सब भी साधना के काम आए। देखते-देखते अरुण ने सब के छक्के छुड़ा दिए। सभा समाप्त हुई, उस समय वह बोल रहा था, और अन्य सब लोग सुन रहे थे।

चाय इत्यादि हो चुकने के उपरान्त अरुण जब अन्य सबके साथ कोठी से बाहर निकला तब उन लड़कियों में से एक लड़की ने उसके निकट आकर कहा: "आप किधर जाएँगे, मिस्टर शर्मा!"

अरुण ने कहा: "कमलानगर।"

"तो आइए, मैं आपको ड्रॉप कर आऊँ। मेरे पास एक छोटी-सी मोटर है।"

"आप उसी ओर रहती हैं क्या ?"

"नहीं, रहती तो मैं नई दिल्ली में हूँ। चाणक्यपुरी में।"

"तो फिर ? आपको तो बहुत चक्कर पड़ जाएगा।"

"चक्कर पड़ेगा मोटर के चक्के को। मुझे तो मज़ा आएगा।"

अरुण उसकी मोटर में जा बैठा। मोटर स्टार्ट करके उस लड़की ने पूछा :·"मेरा नाम याद है आपको ?"

अरुण ने झेंपकर कहा : "जी . आपका नाम...आपका...आ...

"रञ्जना। मैं भी आपका नाम भूल गई।"

"अरुण।"

"तुम...आपको तुम ही कहूँगी। मुझे भी तुम 'तुम' कहो तो अच्छा लगेगा। हम दोनों तो एक ही उम्र के हैं।"

अरुण मौन रहा। मुस्कराता हुआ। उसको अपने सौभाग्य पर विश्वास नहीं हो रहा था। कहाँ तो वह 'गाँव का जाट' और कहाँ यह...

रञ्जना ने कहा : "तुमसे मैं तर्क नहीं करूँगी, अरुण ! मैंने तुम्हारे जितना पढ़ा नहीं। विचार भी नहीं किया। इसलिए तर्क की दृष्टि से मैं तुरन्त ही तुम से हार मान लेती हूँ। मैं तो अपने दिल की बात कह रही हूँ। तुम भी अपने दिल पर हाथ रखकर कहना—तुम्हारा वह सच्चिदानन्द यह क्या संसार बनाने बैठा ? वह इतना शक्तिमान है, बुद्धिमान है, दयालु है, पतितपावन है, और न जाने क्या-क्या है। किन्तु उसने यह संसार क्या बना दिया ? इतना अन्याय, इतना अविचार, इतनी कुरूपता, इतना निरानन्द !!"

अरुण रञ्जना के मुख की ओर देखने लगा। रञ्जना के मुख पर वेदना की लहर पर लहर उमड़ रही थी। कण्ठ-स्वर उत्तरोत्तर कटु होता जा रहा था। उसने एक क्षण रुक कर कहा : "जानते हो इस संसार में एक ओर कितनी ग़रीबी है, और दूसरी ओर कितनी अमीरी ? एक ओर कितनी शराफ़त, और दूसरी ओर कितनी गुण्डागर्दी ? शरीफ़ लोगों को

खाने-पहिनने को नहीं मिलता, गुण्डे गुलछर्रे उड़ा रहे है ।"

रंजना चुप हो गई । कार दरियागंज के भीड़-भरे रास्ते पर पहुँचा चुकी थी । अरुण रंजना की बात पर सोचने लगा । गुण्डागर्दी के विषय में वह कुछ नहीं जानता था । गुण्डे कौन हैं, और वे किस प्रकार गुलछर्रे उड़ा रहे हैं—इस बात का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था । किन्तु यह तो उसने अपनी आँखों से देखा था कि शरीफ़ लोग खाने-पीने के लिए भी पर्याप्त साधन नहीं जुटा पाते । अरुण की आँखों में साधना का चित्र था । उस चित्र में शराफ़त के सिवाय मनुष्य का कोई अन्य चरित्रगुण नहीं था । और साथ ही उस चित्र में था घोर दारिद्र्य । ऐसा दारिद्र्य जो उसने और कहीं पर भी, कभी भी नहीं देखा था ।

भीड़ को पार करके रंजना ने कहा : "मेरी बात का उत्तर दो, अरुण !"

अरुण बोला : "सोचकर उत्तर दूँगा ।"

"क्या तुमने कभी इस प्रकार नहीं सोचा ?"

"नहीं, कभी नहीं सोचा ?"

तदनन्तर रंजना कुछ नहीं बोली । वह सारे रास्ते चुपचाप मोटर चलाती रही । किन्तु अरुण के मानस में उसने उथल-पुथल मचा दी थी । युनिवर्सिटी के पास आकर अरुण ने आग्रह किया कि वह वहीं मोटर से उतरेगा, और पैदल ही घर जाएगा । रंजना की बात पर विचार करता हुआ । रंजना ने एक क्षण रुक कर कहा : "अरुण ! कर्म का सिद्धान्त लेकर कल मेरे पास न पहुँच जाना । उससे मेरा समाधान नहीं होगा । जो लोग शरीफ हैं उन्होंने अपने पिछले जन्म में ज़रूर कुछ शुभ कर्म किए होंगे । तभी उनको ऐसा सुन्दर स्वभाव मिला । किन्तु उनके बाह्य जीवन को विडम्बना में डालकर विधाता ने उनको उन्हीं शुभ कर्मों का कठोर दण्ड दिया है । कर्म का सिद्धान्त यदि कोई समाधान प्रस्तुत करता है तो केवल यही । वह सिद्धान्त मेरे किसी काम का नहीं ।"

रंजना चली गई । उस दिन । अरुण घण्टों उसकी बात पर सोचता रहा । जी चाहा कि साधना को पत्र लिख दे । किन्तु पत्र नहीं लिख

पाया। न जाने क्यों ? रह-रहकर उसका मन उसे रोकता रहा—साधना क्या कहेगी ? इतने दिन तक शास्त्र-चर्चा करके उसने जिस विगत-संशय विश्वास का विटप अरुण के मानस में अंकुरित किया था, वह क्या इतना मूलहीन था कि शंका के एक संकेत ने गिरा दिया ? यह तो अरुण की अपनी हार नहीं थी। यह तो साधना की ही हार थी। उसकी अपनी हार होती तो अरुण तुरन्त ही साधना को सूचना दे देता। किन्तु साधना की हार के विषय में वह मौन हो गया। वह साधना की विजय का मार्ग खोजने लगा।

तदनन्तर वह प्रायः नित्य ही रंजना से मिलने लगा। वह नित्य ही आकर उसे अपने साथ ले जाती थी। कभी कॉफी हाउस में, कभी किसी एकान्त मैदान के उस पार। वे घण्टों बातें करते थे। और मौन होकर घण्टों बैठे भी रहते थे। अन्तरिक्ष की ओर निहारते हुए। टुकुर-टुकुर।

अरुण को पता चला कि रंजना किसी बहुत ही धनाढ्य परिवार की लड़की है। वह किसी गर्ल्स कॉलेज में पढ़ती थी। एम. ए. के प्रीवियस ईयर में। इस प्रकार अरुण उससे जूनियर था। किन्तु रंजना ने कभी उसको ऐसा अनुभव नहीं होने दिया। वह सदा ही उसको सब प्रकार से अपना समकक्ष मानती थी। कॉफी हाउस में भी अरुण जब बिल चुकाने का आग्रह करता था तो वह अपना पर्स नहीं निकालती थी।

रंजना को कविता लिखने का शौक था। वह अरुण को अपनी कविताएँ सुनाने लगी। अरुण ने अभी तक साधना के स्तोत्र एवं भजन ही सुने थे। स्कूल कॉलिज की पाठ्य-पुस्तकों में भी कुछ कविताएँ पढ़ी थीं। किन्तु उनमें से किसी कविता का मनन उसने कभी नहीं किया था। और अब तो वह उन सब-की-सब कविताओं को भूल भी चुका था। इसलिए पहले-पहल उसको रंजना की कविताएँ कुछ अटपटी लगीं। किन्तु धीरे-धीरे वे कविताएँ उसके मानस को छूने लगीं। उन कविताओं में न जाने कैसा एक सामर्थ्य था। रुला देने का सामर्थ्य। आँसू तो उसके उस समय भी निकलते थे जब साधना स्तोत्र अथवा भजन गाती थी। किन्तु उन आँसुओं में आल्हाद था। और इन आँसुओं में विषाद।

रंजना की कविता का विषय घूम-फिरकर एक ही होता था। संसार में चारों ओर भरा हुआ वैषम्य, अन्याय, अविचार, हृदयहीनता इत्यादि। और उसके बीच आर्तनाद करता हुआ मानव का मृदुल मानस! मानव न्याय माँग रहा था, संवेदना और सहानुभूति माँग रहा था, प्यार और दुलार माँग रहा था। किन्तु उसकी माँग का प्रत्युत्तर देने वाला क्या कोई था? रंजना की कविता कहती थी कि कोई भी नहीं! कहीं भी नहीं!!

अतएव तीसरे साल दशहरे की छुट्टियों में अरुण जब जीतपुर गया तो उसके मानस में रंजना की वे कविताएँ किलबिला रही थीं। वह चाहता था कि साधना के साथ बैठकर वह उन कविताओं को किसी कसौटी पर कसे। पहले दिन के अपने आचरण तथा वचन से उसने उन कविताओं का मर्म व्यक्त भी किया। किन्तु साधना के साथ दो-चार दिन बीतते-न-बीतते उसके मानस की वह समस्त किलबिलाहट पानी पर उठे हुए बुल-बुलों की नाई विलीन हो गई। वह भूल गया कि संसार में कैसा वैषम्य तथा अन्याय-अविचार भरा है। साधना के स्तोत्र और भजनों ने उसके संसार को फिर एक शुद्ध रस से सराबोर कर दिया।

किन्तु उसके दिल्ली लौटते ही वे बुलबुले पुनः उसके मानस-सागर पर मचलने लगे। रंजना ने अपनी नई कविताएँ सुना कर पुनः उसकी श्रद्धा को कुण्ठित कर दिया। वह फिर-से वेदना की व्यथा वहन करने लगा। और वह निश्चय नहीं कर पाया कि साधना की दी हुई श्रद्धा सत्य है, अथवा रंजना की दी हुई वेदना। वह कभी साधना को अपनी मानसपटी पर उभारता था, कभी रंजना को। किन्तु दोनों को एक साथ नहीं उभार पाया। और न उन दोनों का सम्भाषण ही करा पाया। एक के मुखरित होते ही, दूसरी मौन हो जाती थी। और स्वयं अरुण में तो उनमे से किसी के साथ भी सम्भाषण करने का सामर्थ्य नहीं था।

: ३ :

बसन्त पंचमी का दिन था। दिन के दस बजे होंगे। अरुण अपने कॉलेज से बाहर निकला। कॉलेज में सरस्वती पूजा थी उस दिन। बीस-तीस छात्र-छात्राएँ ही उस पर्व पर आए थे। एक हजार से ऊपर छात्र-छात्राओं में

से। अरुण भी उनमें से एक था।

कॉलेज से निकलकर वह सड़क पर चल दिया। अनुद्देश्य। चलते-चलते निश्चय करना चाहता था कि कहाँ जाएगा। घर वह नहीं जाना चाहता था। काटने को दौड़ता था वह घर। इतने दिन का घर। वह घर जिसमें उसका एकाकीपन पनपा था। अब किन्तु वह अपने एकाकीपन से दूर भागने लगा था। क्यों? अरुण समझ नहीं पाया।

अन्तर टटोलने लगा अरुण। अपना अन्यमनस्क अन्तर। वह अन्य-मनस्क क्यों था? क्या खो दिया था उसने? क्या नहीं पाया था उसने? वह क्या पाना चाहता था? साधना का पत्र? पत्र तो साधना के कई आ चुके थे। प्यार-भरे पत्र। उसने ही उत्तर नहीं दिया था। एक का भी उत्तर नहीं दिया था। सोचता रहा था—आज उत्तर दूंगा, कल दूंगा। दिन बीतते गए थे। और उसने पत्र नहीं लिखा था। लिखा ही नहीं गया था उससे। क्यों? अरुण समझ नहीं पाया।

समझ सकता था वह। समझना चाहता तो। किन्तु वह समझना ही नहीं चाहता था। समझ जागती थी तो वह सिर छुपाने लगता था। नहीं; ऐसा नहीं हो सकता! ऐसा नहीं होना चाहिए!!

उसके जीवन में सभी कुछ वैसा ही था। वही कॉलेज। वही क्लास-रूम। वही लेबॉरेटरी। वही लैक्चरर। वही पुस्तकालय। वही घर। वही सड़क। वही शहर। और वे साधना के पत्र भी वैसे ही थे। कुछ भी तो नहीं बदला था। तो फिर?

नहीं, कुछ तो बदला था। क्या बदला था? अरुण फिर समझने की चेष्टा करने लगा। और उसने फिर सिर छुपा लिया।

सहसा वह उछलकर एक ओर हो गया। किसी की कार का हॉर्न हिन-हिनाया था। ठीक उसकी पीठ पीछे। मानो वह कार उसके ऊपर से निकलना चाहती है। अरुण का कलेजा धक्-धक् करने लगा। और उसने किंचित् क्रुद्ध होकर कार की ओर देखा।

रञ्जना ड्राइवर की सीट पर बैठी हंस रही थी। खिड़की से बाहर सिर निकालकर। उसको देखकर अरुण को सारे शरीर में एक लहर-सी दौड़

गई। अपूर्व आह्लाद की लहर। यही तो थी वह। वही जो खो गई थी। अकस्मात्। उसको सूचना दिए बिना।

रञ्जना ने कहा : "तुम देहाती हो ना, अरुण !"

अरुण ने आगे बढ़कर कहा : "हाँ, रञ्जना ! देहाती तो हूँ।"

"तो चलो मेरे साथ।"

"कहाँ ?"

"देहात में। देखते नहीं बसन्त आ गया। खेतों में सरसों फूली है। दूर-दूर तक। आँखें उस हरी-पीली चूनर पर से उठना नहीं चाहतीं।"

"देखकर आई हो ?"

"हाँ, कल।"

"अकेली, अकेली ?"

रञ्जना ने उत्तर नहीं दिया। अरुण दूसरी ओर का दरवाज़ा खोलकर उसके बराबर में जा बैठा। रञ्जना ने कार चला दी। कुछ देर दोनों मौन बैठे रहे। कार रिज को पार करके अलीपुर रोड पर दौड़ने लगी।

तब रञ्जना ने पूछा : "गूँगे हो गए, अरुण !"

वह अरुण की ओर देख रही थी किन्तु अरुण ने उसकी ओर आँखें नहीं फेरीं। वह सामने की ओर देखता रहा। निर्निमेष नयनों से। बोला कुछ नहीं।

रञ्जना ने फिर कहा : "अरुण ! मैंने अभी क्या पूछा था ?"

अरुण बोला : "गूँगा कोई उत्तर कैसे देगा, रञ्जना !"

"गूँगे क्यों हो गए ?"

"तुमने बना दिया।"

"मैंने ! मैंने क्यों बना दिया ?"

"तुम एक हफ्ते तक गायब रहीं। और मुझे खबर तक नहीं दी ?"

रञ्जना जैसे यही सुनने के लिए अधीर थी। युग-युग से। जन्म-जन्मान्तर से। उसका मुख खिल उठा। बुझा-बुझा-सा रहने वाला मुख। कार काश्मीरी गेट पार कर चुकी थी। एक रेस्तरां देखकर रञ्जना ने कहा,

"अरुण ! एक प्याला कॉफी पीते चलें।"

अरुण मान गया। और वे दोनों कार से उतर कर रेस्तराँ में चले गए।

कॉफी पीते-पीते रञ्जना ने पूछा : "सच, अरुण ! तुमको मेरी याद आई ?"

अरुण ने उत्तर नहीं दिया। किन्तु उसकी आँखों में आँसू छलक आए। रञ्जना ने देख लिए वे आँसू। और उसकी आँखें भी भर आईं।

एक-से आँसू थे। दोनों की आँखों के आँसू। खारे-खारे। गर्म-गर्म। आँखों के कोरों पर ओस-कण से चमकने वाले आँसू। कपोलों पर ढुलक पड़ने के लिए लालायित आँसू।

नहीं, एक-से नहीं थे वे आँसू। रञ्जना के आँसुओं में आह्लाद था। अरुण के आँसुओं में विषाद। रञ्जना के आँसुओं में जय थी। अरुण के आँसुओं में पराजय। अरुण ने अपने आँसू पोंछ लिए। रञ्जना ने नहीं पोंछे। वे आँसू उसके कपोलों पर ढुलक आए। शीतल हो गए उसके कपोल। जैसे चातक ने स्वाति-जल का पान किया हो।

रञ्जना मुस्करा उठी। आँसुओं में से मुस्करा उठी। किन्तु अरुण ने अपना सिर झुका लिया। अरुण के मुख पर बेबसी थी। रञ्जना की बेबसी। रञ्जना के मुख पर तृप्ति थी। अरुण की तृप्ति। न जाने क्योंकर हो गया था यह आदान-प्रदान ! न जाने कब !!

रञ्जना बोली : अरुण ! कॉफी ठण्डी हो रही है।"

अरुण प्याला उठाकर पीने लगा। और बातें नहीं हुईं उनमें। वे एक दूसरे की ओर देखते थे। निष्पलक नेत्रों से देखते थे। और अरुण सिर झुका लेता था। एक क्षण के लिए। दूसरे क्षण फिरसे रञ्जना की ओर देखने के लिए। अधीर होकर देखने के लिए। जैसे उसका मन कह रहा हो कि उसने रञ्जना को नहीं देखा तो वह फिर खो जाएगी। फिर...

कार को स्टार्ट करके रञ्जना ने पूछा : "अरुण ! महरौली की ओर चलें, या शाहदरे की ओर ?"

अरुण ने पूछा : "तुमने वे खेत किस ओर देखे थे ?"

"रोहतक रोड से आते हुए।"

अरुण चुप हो गया। रञ्जना ने पूछा : "तो चलूं उसी ओर ?"

अरुण ने जैसे भयभीत होकर कहा : "नहीं, उस ओर नहीं, रंजना !"

"क्यूं ?"

अरुण ने उत्तर नहीं दिया। वह बेबस आँखों से रंजना को देखने लगा। रंजना ने पूछा : "तो फिर किस ओर चलूं ?"

अरुण ने मुँह फेर कर कह दिया : "जिस ओर तुम्हारा जी चाहे।"

और शाहदरा के उस पार सरसों के खेतों तक अरुण ने फिर मुँह नहीं खोला। वह अन्तरिक्ष में आँखें उलझाए रहा। न रंजना ने ही एक शब्द कहा। वह कार चलाती रही। और गुनगुनाती रही। कोई गीत। शायद उसका अपना था वह गीत। शायद किसी और का। किन्तु उसके शब्द-शब्द में व्यथा भरी थी—हे आँसू के कारावासी ! तू खोल न स्मित का वातायन !

कार को सड़क के किनारे खड़ा करके वे खेतों में घुस गए। धरा ने दूर-दूर तक धानी चूनर ओढ़ी थी। पीले गोटा-किनारी का काम की हुई चूनर। अरुण और रंजना उस चूनर को देखते हुए चहल-क़दमी करने लगे। बसन्त की बयार बह रही थी। बहकी-बहकी बयार। क्षण-क्षण में छेड़खानी करने पर उतारू। वह अरुण के अस्त-व्यस्त बालों से छेड़खानी कर रही थी। रंजना के सँवारे हुए केशपाश से भी। रंजना बार-बार अपने माथे पर बिखरी लटों को अपनी लम्बी-लम्बी अँगुलियों से हटा लेती थी।

रंजना ने कहा : "शेर सुनोगे, अरुण !"

"अरुण ने पूछा : "तू ...तुम शेर भी कहती हो, रंजना !"

"तू से तुम पर उतर आए ?"

"भूल हो गई थी। सुधार ली।"

"क्यूँ सुधारी ?"

"भूल को सुधार लेना ही अच्छा होता है।"

"और कोई सुधार न चाहे तो ?"

"मैं तो सुधार लेना चाहता हूँ, रंजना !"

"किन्तु इस भूल का सम्बन्ध तो मुझसे है, अरुण ! मैं तो सुधार नहीं चाहती। मैं तो चाहती हूँ कि तुम ऐसी भूलें बार-बार करो।"

"तू तो शेर सुना रही थी, रंजना !"

"तो सुनो।"

"तरन्नुम में।"

"मुझे गाना नहीं आता।"

"सारे रास्ते तो गाती आई है।"

"वह तो बाथ-रूम सिंगिंग थी।"

"वही सही। किन्तु तू गाकर सुना।"

रंजना ने गला साफ करने के लिए खांसा। अरुण उसकी ओर देख रहा था। मुग्ध दृष्टि से। रंजना लजा गई। और वह बोली : "नहीं गाया जाएगा मुझ से।"

अरुण बोला : "अच्छा, मैं मुँह फेर लेता हूँ। अब तो गाएगी ?"

अरुण दूसरी ओर देखने लगा। रंजना ने शेर गाया :

न छेड़ ए नगहते बादे-बहारी राह लग अपनी।
तुम्हें अठखेलियाँ सूझी...

रंजना बीच में ही रुक कर बोली : "चोर !"

अरुण कनखियों से उसकी ओर देख रहा था। उसने तुरन्त मुँह फेर लिया। रंजना ने कहा : "बेईमान कहीं के !"

अरुण ने उसकी ओर मुख मोड़कर कहा : "मेरा मन नहीं माना, रंजना ! तुझे गाती हुई देखने का लोभ होने लगा।"

रंजना उसकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। वह बोली कुछ नहीं। किन्तु उसकी चितवन ने न जाने क्या-क्या कह डाला। अरुण लड़खड़ा गया। चोट-सी खाकर। हृदय पर पड़ी थी वह चोट। सीधी। मर्म बेध गई उसका। और उस मर्म में बैठी मूर्ति को भी।

साधना की मूर्ति थी वह। अरुण जब भी चाहता था उस मूर्ति को अपनी आँखों के आगे साकार कर लेता था। आँखें मूंदकर। किन्तु अब

वह मूर्ति वहाँ से खिसकने लगी। उसके अन्तस्तल के आसन पर से खिसकने लगी। अरुण तिलमिला उठा। उसने सँभालना चाहा उस मूर्ति को। उसको पकड़ना चाहा अरुण ने। किन्तु वह सफल नहीं हुआ। मूर्ति हठात् तिरोहित हो गई। अरुण माथा पकड़कर बैठ गया। हरे-पीले खेतों के बीच बैठ गया।

रञ्जना ने उसके पास आकर पूछा : "क्या बात है, अरुण !"

अरुण ने उत्तर दिया : "कुछ नहीं।"

"कुछ तो है।"

"जी घबरा रहा है।"

"इस स्थान पर ! ऐसे वातावरण में ! ! आज के दिन ! यह क्या कह रहे हो, अरुण !"

अरुण उठकर खड़ा हो गया। रञ्जना के स्वर में शिकायत थी। उसने सूखी हँसी हँसकर कहा : "रञ्जना ! शेर के माने तो समझा दे।"

रञ्जना बोली: "माने तो सीधे हैं।"

"मुझे उर्दू नहीं आती।"

"मुझे भी नहीं आती।"

"तो शेर कैसे कह लेती है ?"

"कहाँ ! यह तो मशहूर शेर है। किसी मशहूर शायर का। मौका देखकर मुझे याद आ गया, और मैंने कह दिया।"

अरुण कुछ नहीं बोला। वे दोनों फिर मौन धारण करके बढ़ चले। उस ओर बढ़े चले जिस ओर क्षितिज उनको आमन्त्रित कर रहा था। धरती और आकाश के अधर एक-दूसरे का स्पर्श करके एकाकार हो गए थे वहाँ।

दो फर्लांग चले होंगे वे। मौन रह कर। मुग्ध दृष्टि से प्रकृति के वैभव को निहारते हुए। खेतों के बीच एक कूआँ आ गया। रहट वाला कूआँ। रहट बन्द था। कोई नहीं था कूएँ पर। खेत में भी नहीं। वे दोनों कूएँ की मुंडेर पर जा बैठे। एक-दूसरे से सटकर। अरुण की सांस रञ्जना को छू रही थी।

अरुण ने पूछा : "इतने दिन कहाँ रही तू, रंजना !" रञ्जना ने कहा : "क्यूं बतलाऊँ ?"

"भेद की बात है ?"

"हाँ।"

"तब मैं नहीं पूछूंगा।"

"क्यूं नहीं पूछोगे ? तुम नहीं पूछोगे तो और कौन पूछेगा ?"

"किसी की भेद की बात मैं क्यूं पूछँ ?"

"किसी की किस की ? मेरी ही तो बात है।"

"किन्तु भेद की बात जो है।"

"तुम मेरा भेद जानना नहीं चाहते, अरुण !"

रञ्जना के स्वर में फिर शिकायत थी। अरुण ने कुछ नहीं कहा। वह कूएं में देखने लगा। कूएं की तह में जल चमक रहा था। आँख का तारा सा। सजल था वह तारा। जैसे कोई आँख रोकर चुकी हो। अरुण ने सहमकर अपनी आँखें उस ओर से हटा लीं।

एक अन्य आँख की स्मृति जगा दी उस दृश्य ने। उस आँख का तारा भी ऐसा ही चमकता था। ऐसा ही सजल होकर। वह सामने खेतों की ओर देखने लगा। रञ्जना ने पूछा : "सरसों कैसी फूली है, अरुण !"

अरुण ने उत्तर दिया : "बहुत सुन्दर !"

"तुम्हारे गाँव में भी ऐसे ही फूलती है ?"

"हाँ।"

रञ्जना ने फिर उसको आहत कर दिया। अनजाने। उसके गाँव का उल्लेख करके। अरुण के मुख से एक दीर्घ निश्वास निकल गई। किन्तु रञ्जना ने उस निश्वास को लक्ष्य नही किया। वह विभोर होकर सरसों के खेत देख रही थी।

एक क्षण उपरान्त वह बोली : "यहाँ आने का प्रोग्राम होता तो मैं भी सरसों-सी पीली साड़ी पहन कर आती। पीला ब्लाउज भी। भली लगती।"

अरुण ने कहा : "प्रोग्राम तो तूने ही बनाया था।"

"अचानक। तुमको देख कर।"

"पहिले क्या प्रोग्राम था ?"

"तुम्हें खोज कर निकालने का।"

"मैं कहाँ गया था ?"

"घर पर नही मिले। पुस्तकालय पर गई। बँद था। कॉलिज में पहुंची। पूजा पूरी हो चुकी थी। भाग्य से मिल गए तुम। मैं तो दूसरे रास्ते भी जा सकती थी।"

"कहाँ जाना था ?"

"घर। और कहाँ ?"

"आज के दिन ! बसन्त को तो तू बाहर निकलती है ना ?"

"बहुत दिन पहिले निकली थी एक बार। फिर नहीं।"

"फिर क्यूँ नहीं ?"

"वह बसन्त मुझको बरबाद कर गई। इस लिए। बसन्त से चिढ़ती हूँ मैं। मुझे फूटी आँखों भी नहीं सुहाती बसन्त।"

"तो फिर कैसे चली आई ?"

"तुमको देखकर।"

"मुझको देखकर ? सो क्यों ?"

"पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। सोचा एक बार फिर सरसों के खेत देखूंगी।"

"और फिर बरबाद हो गई तो ?"

रंजना ने अरुण का हाथ अपने हाथों में ले लिया। फिर वह उसकी ओर देखकर बोली : "तुम होने दोगे बरबाद ?"

अरुण हँसने लगा : "मुझे क्या मालूम तू क्या कह रही है ? पहेलियाँ बुझा रही थी। मैंने भी एक पहेली प्रस्तुत कर दी।"

"पहेली का अर्थ ?"

"तू अपनी पहेली का अर्थ बतलाए तो मैं भी बतला दूँगा।"

"मेरी पहेली का अर्थ ! सुनोगे, अरुण ! सुनकर शिकायत तो नहीं करोगे ?"

"मैं क्यों शिकायत करने लगा ?"

"मुझे भय लगता है।"

"तो जाने दो।"

"फिर वही बात !"

"कौन-सी बात ?"

"तुम मेरी कोई भी बात सुनना नहीं चाहते।"

"पूछता हूँ तो तू इधर-उधर करने लग जाती है। नहीं पूछता तो नाराज़ होती है। तू तो स्वयं एक पहेली है, रञ्जना !"

"थी नहीं। बन गई। बना दी गई। बरबस।"

"किसने बना दी ?"

"ज़माने ने।"

"जमाना क्या होता है ?"

"तुम क्या समझोगे ?"

"समझाओगी तो समझूँगा। जरूर समझूँगा। कैमिस्टरी की इक्वेशन समझ जाता हूँ। कैलकुलस की कूद-फाँद भी।"

"यही तो मुश्किल है !"

"कौन-सी ?"

"तुम तो कोरी बुद्धि के बोझ हो, अरुण ! दिल नहीं है तुम्हारे पास।"

"दिल भी है, रञ्जना ! दिल भी है। पर मैं उसे छुपाए रहता हूँ।"

"क्यूँ ? तुम्हारा दिल काला है, इसलिए ?"

रञ्जना हँस पड़ी। अरुण को भी हँसी आ गई। एक-सी हँसी थी दोनों की। बाहर से। किन्तु भीतर से नहीं। भीतर से रञ्जना की हंसी और थी। अरुण की हँसी और। रञ्जना की हँसी में सुख की छाप थी। अरुण की हँसी में दुख की।

वे फिर मौन हो गए। और मौन होकर बैठे रहे। आध घड़ी तक। तब हठात् रञ्जना गा उठी :

रो लूँगी जब दुख आएगा,
सुख में तो हँसने गाने दो...

सुख में तो...

अरुण चमक उठा। यह कैसा गान था ! रञ्जना के कलकण्ठ से ! उस मुहूर्त में ! उस मुग्ध मुहूर्त में !! रञ्जना की आँखों से अश्रुधार बह रही थी। अरुण ने पूछा :

"क्या हुआ, रञ्जना !"

रञ्जना ने भर्राए स्वर में उत्तर दिया :

"अपना सुख मुझसे नहीं सहा जाता, अरुण !"

"सुख !"

"हाँ, अरुण ! अपना दुख मैं सह लेती हूँ। सुख सहने का सामर्थ्य ही मुझ में नहीं है।"

"अजीब बात है ! लोग तो अपने दुख पर रोते हैं। अपने सुख पर रोते तो तुझे ही देखा। जीवन में पहिले-पहल।"

"वे पगले हैं, अरुण ! वे लोग जो अपने दुख पर रोते हैं।"

"क्यूँ ?"

"दुख तो जीवन का दैनन्दिन धर्म है। रोज-रोज का साथी। उस पर कोई क्या रोए ?"

"और सुख ?"

"कभी-कभी आता है। चले जाने के लिए। इसीलिए वह रुलाता है।"

"रुलाता क्यों है ?"

"सुख आता है। तन-प्राण में सिहरन जाग जाती है। मीठी-मीठी सिहरन। किन्तु दूसरे क्षण...

रञ्जना मौन हो गई। अपनी बात को पूरा किए बिना ही। अरुण ने अधीर होकर पूछा ? "दूसरे क्षण ! दूसरे क्षण क्या होता है, रञ्जना !"

रञ्जना कराह उठी : "मानस भय से भर जाता है, अरुण !"

"कैसा भय ?"

"सुख के चले जाने का भय। सुख के लौटकर न आने का भय।"

अरुण मौन हो गया। बात उसकी समझ में आकर भी नहीं आई।

रञ्जना ने उसका कंधा छूकर पूछा: "क्या सोच रहे हो, अरुण !"

अरुण बोला : "यही सोच रहा हूँ कि तुझे कौन-सा दुख है। सभी कुछ तो है तेरे पास ?"

'मेरे पास क्या है ?"

"धन, मान, प्रतिष्ठा, सामर्थ्य—सभी कुछ तो है।"

"इतने से क्या हो जाता है ?"

"और होने को रह ही क्या जाता है ?"

"इतने से मनुष्य का मन भर जाएगा, अरुण !"

"बहुतों का मन भर जाता है।"

"किन्तु किसी-किसी का मन नहीं भरता। हैं ?"

"हाँ, किसी-किसी का मन नहीं भरता। वह मन कुछ और भी माँगता है।"

"क्या माँगता है ?"

"सो मैं नहीं जानता।"

"तुम्हारा मन भरा है ना ! इसलिए !"

"नहीं, मन तो मेरा भी नहीं भरा।"

"तो वह कुछ माँगता है ?"

"हाँ, रञ्जना !"

रञ्जना ने बात आगे नहीं बढ़ाई। अरुण उससे किसी प्रश्न की प्रत्याशा कर रहा था। रञ्जना को मौन पाकर उसने पूछा : "तू चुप हो गई, रञ्जना !"

रंजना ने कहा : "प्रश्न पूछने से भय लगता है।"

"कैसा भय ?"

"तुम न जाने क्या कह डालो।"

"तू मुझ से क्या कहलवाना चाहती है ?"

"कहोगे ?"

"कोशिश करूँगा"

"तब बेकार है।"

रञ्जना ने मुख फेर लिया। अरुण की समझ में कुछ नहीं आया। एक क्षण उपरान्त वह बोला : "अच्छा, रञ्जना ! तेरी बात ही कहूँगा। तू कह तो, क्या कहलवाना चाहती है।"

रञ्जना ने उसकी ओर मुख फेरकर पूछा : "मुख से ही कहोगे, या..."

"नहीं, दिल से कहूँगा।"

"दिल है तुम्हारे ?"

"यह देखो। धड़क रहा है।"

"यह तो ब्लड पम्प करने की मशीन मात्र है। मैं इस दिल की बात नहीं कहती। मैं दूसरे दिल की बात कहती हूँ।"

"वह दिल भी है मेरे पास।"

"तो उसको तैयार करो, अरुण !"

"वह सब तरह से तैयार है।"

"तो कह दो कि तुम रञ्जना को चाहते हो !"

अरुण का मुख आवेश से आरक्त हो गया। उस मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वह मुख रञ्जना को देखता रह गया।

रञ्जना ने कहा : "अरुण ! अपनी बात से मुकर रहे हो तुम !"

अरुण बोला : "तुम ने बात ही ऐसी कह दी।"

"झूठी बात कह दी। ना ?"

"झूठी तो नहीं कही।"

"तो फिर ?"

"किन्तु मैं अपने मुख से कैसे कहूँ ?"

"मत कहो अपने मुख से। दिल को टटोल लो। उस दिल में रञ्जना का दिया दर्द तो है ना ?"

"है।"

रञ्जना ने अरुण के दोनों हाथ पकड़ कर अपने कपोलों से लगा लिए। फिर वह बोली : "अब मुझे और कुछ नहीं कहना, अरुण ! अब मुझे कुछ नहीं कहलवाना। अब मैं प्रलय-काल तक मौन रह सकती हूँ।"

अरुण ने कुछ नहीं कहा। उसकी आँखों से आँसू भर आए थे। उनको

छुपाने के लिए उसने अपना मुख फेर लिया।

दिल्ली की ओर लौटते समय अस्तायमान मरीचिमालि की किरणें, विंडशील्ड को वेधकर रञ्जना का केशपाश रंजित कर रही थीं। रञ्जना ने सामने की ओर देखते हुए कहा : "दो साल हो गए, अरुण ! मैं एक ऐसी ही साँझ में, इसी पथ से लौटी थी। इसी स्थान पर दिन बिताकर। उस दिन मुझको मालूम नहीं था कि वह मेरे साथ ऐसी दगा करेगा। आज भी मैं···

अरुण ने चौंककर पूछा : "वह कौन ?"

"वही जिसने अगले दिन आत्मघात कर लिया। पोटाशियम साय-नाइड खा कर।"

"क्यों ?"

"वही तो मैं नहीं जानती। कोई भी नहीं जानता। उसने किसी को कुछ बतलाया ही नहीं।"

रञ्जना का स्वर भर्रा आया। अरुण मौन हो गया। जमना का पुल पार करके रञ्जना ने अपने आँसू पोंछ लिए। फिर वह बोली :

"मैं भी आत्मघात कर लेती, अरुण ! किन्तु...

रञ्जना ने अपनी बात पूरी नहीं की। अरुण ने पूछा : "किन्तु क्या ?"

रञ्जना ने उत्तर दिया : "उसके आत्मघात की बात ही झूठी निकली। वह फिर आ गया। वैसा ही। जीता-जागता।"

"वह कहाँ है ? कौन है ?"

"मेरे बगल में बैठा है। इस समय।"

तीसरा परिच्छेद

: १ :

घर लौटा तो अरुण का सिर घूम रहा था। जैसे रात-भर शराब पीने वाले शराबी का सिर सुबह के समय घूमता है। रञ्जना थी उसकी शराब। जब तक वह साथ रही तब तक अरुण नशे में झूमता रहा। सब कुछ भूल कर। सब कुछ की अवगणना करके। किन्तु रञ्जना के जाते ही...

अरुण के मानस में प्रलय मचलने लगी। पश्चात्ताप की प्रलय। उसका अन्तर्द्रष्टा उसकी भर्त्सना कर रहा था। वह पूछ रहा था : "तुम क्यों गए उसके साथ ? सरसों के खेत में क्यों गए ? क्यों सुनीं उसकी वे बातें ? बींध देने वाली बातें ? उसके प्रणय-निवेदन को क्यों प्रोत्साहन दिया ? विह्वल प्रणय-निवेदन को ? जिस पथ पर वह पदार्पण कर रही थी उस पथ का प्रतिरोध क्यों नहीं किया तुमने ? तुरन्त ! तत्क्षण ! अब तो वह बहुत आगे बढ़ गई। अब क्या वह लौटेगी ? और कौन लौटाएगा उसको ?"

अरुण ने मुख खोलकर कहा : "नहीं, रञ्जना को लौटना ही पड़ेगा। वह भटक गई है। वह स्वयं भी भटक गया था। आवेश के एक मुहूर्त में। उन दोनों का पथ एक नहीं हैं। एक हो ही नहीं सकता। उसका अपना पथ उसे साधना की ओर ले जाता है। और रञ्जना का पथ...

रञ्जना का स्वर सुन पड़ा : "आत्मघात की ओर !"

अरुण उठकर चल पड़ा। घर के द्वार में फिर से ताला लगा कर। बैठे रहना उसके लिए अशक्य था। सो जाना भी अशक्य। वह चलते

रहना चाहता था। उस क्षण तक जब तक कि उसको कोई समाधान न मिल जाए।

किन्तु समाधान उसे नहीं मिला। रात के बारह बजे वह अपने बासे पर लौटा तब तक भी नहीं। वह एक प्रकार से निराहार था। सुबह उसने रञ्जना के साथ एक कप कॉफी पीई थी। साँझ को, रञ्जना से विदा लेने के पूर्व, दो टोस्ट खाए थे। और फिर एक कप कॉफी पीई थी। किन्तु उसकी भूख न जाने कहाँ भाग गई। पानी पीना भी दुष्कर हो गया उसके लिए।

कमरे में लौटकर अरुण ने साधना के पत्र पढ़े। अभी जो तीन पत्र आए थे, वे पढ़े। उनके पूर्व के भी अनेक पत्र पढ़े। उसकी मेज की दराज़ में करीने से रक्खे थे साधना के पत्र। वह उसके जीवन की जमापूँजी थी। अमूल्य रत्नराशि। और अरुण ने आँसुओं से भिगो दिए वे पत्र।

उसका मन उसे कौंच रहा था : "तूने साधना को यह सब क्यों नही बतलाया ? तूने साधना से यह सब क्यों छुपाया ? रञ्जना तो तेरे जीवन में आज नहीं आई। एक वर्ष से अधिक हो गया। इस बीच तू साधना से मिल भी आया। किन्तु रञ्जना का रहस्य तूने उससे क्यों छुपाया ? तेरे मन में चोर था। तेरे मन में पाप था। तेरे मन में...

मन का दूसरा पक्ष भी उसे कौंचने लगा : "और तूने रञ्जना से ही यह सब क्यों छुपाया ? तूने रञ्जना को ही सब क्यों नहीं बतलाया ? रञ्जना जब तेरे जीवन में आई तब साधना के साथ उसका परिचय क्यों नहीं करवाया ? और सब बातें तो तूने रञ्जना को बतला दीं। फिर साधना का प्रसंग ही तूने क्यों नहीं प्रस्तुत किया ? रञ्जना जिस पथ पर बढ़ गई है, उस पथ पर वह न बढ़ने पाती। बढ़ गई होती तो लौट जाती। चुपचाप। मन-ही-मन सब कुछ समझ कर।"

अरुण करवटें बदलने लगा। चारपाई पर लेट कर। सारी रात उसे नींद नहीं आई। अगले दिन वह कॉलिज में नहीं गया। सड़क पर घूमता रहा। सिनेमा हाउस में घुसा। किन्तु सिनेमा नहीं देखा गया उससे। फिर बाहर निकल कर घूमने लगा।

रात के समय वह देर से घर लौटा। कुण्डे में रञ्जना की स्लिप लगी थी। लिखा था : "तुम कहाँ खो गए, अरुण! सारा शहर छान मारा। तुम नहीं मिले। मिलना। कल आऊँगी। ठीक दस बजे सुबह के। चाय साथ-साथ पीएँगे।"

अरुण ने स्लिप एक ओर रख दी। और वह साधना को एक पत्र लिखने बैठ गया। उसने साधना को सारी बात बतला दी। आद्योपान्त। यह भी बतला दिया कि रञ्जना उससे प्रेम करने लगी है और बहुत शीघ्र पक्का प्रस्ताव पेश कर सकती है। और यह भी कि वह स्वयं रञ्जना के प्रति आसक्ति का अनुभव करने लगा है। तदनन्तर उसने साधना से मार्ग-दर्शन माँगा। पत्र के अन्त में लिखा था : "साधना! मेरा अपना तो कभी कोई पथ नहीं रहा। मैं तो अपने पाँव कभी चला नहीं। तूने ही मुझे पथ दिखलाया है। तूने ही मुझे चलाया है। अब मैं अनायास ही भटक गया हूँ। तू मुझे लौटा ला, साधना! मैं अपने-आप नहीं लौट सकता। रञ्जना मुझे लिए जा रही है। जने किस ओर। मैं उसको मना नहीं कर सकता। तू रञ्जना को रोक दे।"

और तदनन्तर प्रायः एक हफ्ते तक अरुण ने रञ्जना के साथ लुक-छिप का खेल खेला। वह कॉलिज में नहीं गया। परीक्षा निकट थी। लेबॉ-रेटरी का काम अधूरा था। तो भी वह कॉलिज नहीं गया। पुस्तकालय में भी नहीं गया। वह सूर्योदय के समय घर से निकल जाता था। दूर चला था वह। वह उन स्थानों पर नहीं गया जहाँ उसने रञ्जना के साथ सैर की थी। वह अनजाने स्थानों की ओर जाता रहा। एकाकी स्थानों की ओर। जहाँ बैठकर वह, जी चाहे तो, रो ले, और कोई उसे देखे नहीं। वह रात को बहुत देर से लौटता था। और रञ्जना की कई-कई स्लिप उसको कुण्डे में मिलती थीं। पड़ौसियों ने उसको बतलाया कि एक लड़की उसको खोज रही है। उसने उत्तर नहीं दिया।

साधना का पत्रोत्तर उसे मिला। लौटती डाक से। साधना ने उसकी सारी बातों को हँस-हँसकर उड़ा दिया था। उसके मन में किसी के प्रति प्रेम जागा है तो वह कुढ़ने क्यों लगा? कोई उससे प्रेम करती है तो वह पीछे

क्यों हट रहा है ? प्रेम तो भगवान् का अमूल्य वरदान है। इत्यादि। अरुण ने पत्र पढ़ लिया। किन्तु फिर भी वह रञ्जना से मिलने के लिए प्रस्तुत नहीं हो पाया।

तब एक दिन सूर्योदय के पूर्व ही रञ्जना ने उसको आ दबाया। अरुण बिस्तर से उठकर नहाने-धोने जा रहा था। कन्धे पर धोती-तौलिया। हाथ में साबुन। मुँह में टूथ-ब्रश। शिर के केश अस्त-व्यस्त। रञ्जना को द्वार पर खड़ी देखकर वह सकपका गया। रञ्जना ने ताली पीटकर कहा :

"पकड़ लिया ना ?"

अरुण मुँह बाए देखता रहा। बोला कुछ नहीं। रञ्जना ने उसके समीप आकर पूछा : "क्यों, जनाब ! बन्दी से कुछ कुसूर हुआ है आपका ?"

अरुण ने हँसकर कहा : "अरे नहीं, रञ्जना ! मैं तो ऐसे ही···

वह अपनी बात पूरी नहीं कर पाया। उसका चिन्तित मुख देखकर रञ्जना भी गम्भीर हो गई। वह अपने स्वर में संवेदना भर कर बोली : "बात क्या है, अरुण ! मुझसे मत छुपाओ !"

अरुण ने कहा : "कुछ बात हो तो छुपाऊँ, रञ्जना ! सच, कुछ भी बात नहीं।"

"तो इतने दिन तुम कहाँ गोल रहे ? मैं तो इस घर के चक्कर काट कर थक गई। चार-पाँच दिन हो गए···

"मैं घूमने निकल जाता था।"

"मेरी स्लिप मिलीं ?"

"मिली थीं।"

"पड़ौसियों ने समाचार दिया ?"

"दिया था।"

"तो फिर ?"

अरुण ने सिर झुका लिया। रञ्जना ने एक क्षण उसकी ओर देख कर कहा : "अच्छा ! जाओ, तुम नहा आओ। फिर तैयार हो जाओ।

जल्दी से। कहीं चलकर नाश्ता करेंगे ! मैंने तो चाय भी नहीं पीई।"

अरुण ने कहा : "तो मैं पहिले तेरे लिए चाय ले आता हूँ। खाएगी क्या ?"

अरुण अपने हाथ का सामान एक ओर रखने लगा। रञ्जना ने उसका हाथ पकड़ कर कहा : "नहीं, एक साथ चलेंगे कहीं। बाहर। यहाँ बैठकर चाय पीने नहीं आई मैं। तुम जाकर नहा आओ।"

अरुण बोला : "तू यहाँ अकेली बैठेगी ?"

"हाँ। और तुमको विश्वास दिलाती हूँ, अरुण ! कि मैं चोर नहीं हूँ।"

अरुण हँसने लगा। फिर बोला : "मेरा मतलब, इस कमरे में भूत रहता है। तुझको...

रञ्जना ने कहा : "भूत तो नहाने जा रहा है। मुझे भय नहीं।"

अरुण नहाने चला गया। रञ्जना ने कमरे का द्वार भीतर से बन्द करके चटखनी चढ़ा दी। फिर वह अरुण के कमरे में इधर-उधर देखने लगी। मानो कुछ खोज रही हो। अरुण के कपड़े खूँटी पर टँगे थे। गरम कपड़े। कोट और पतलून। उनकी जेबें टटोलीं रञ्जना ने। किन्तु कुछ नहीं मिला। वह नहीं मिला जो वह खोज रही थी। तब उसने अरुण की मेज़ के दराज़ खोल डाले। और कुरसी खींच कर मेज़ के पास बैठ गई।

एक दराज लिफाफों से भरी थी। लिफ़ाफों पर अरुण का नाम और पता था। किन्तु अरुण के अपने हाथ का लिखा हुआ। रञ्जना की कुछ समझ में नहीं आया। क्या अरुण अपने-आपको ही पत्र लिखता रहता है ? लिख सकता है। ऐसा ही बावला है वह। किन्तु लिफाफों पर मोहर तो किसी अन्य स्थान की थी। जीतपुर की। अरुण के गाँव की। रञ्जना ने एक लिफाफे को खोलकर पत्र बाहर निकाल लिया। बड़े ही शुद्ध अक्षरों में लिखा था :

"मेरे गोपाल ! तुम्हारे पाद-पद्मों की पूजा करके मैंने क्या कुछ नहीं पाया ? मेरी श्रद्धा का सम्बल सौ गुना हो गया। मेरे विश्वास में सहस्र-गुना वृद्धि हुई। उस दिन मैंने जिस पथ पर पदार्पण किया था उसका पाथेय बन

कर आई है तुम्हारे पाद-पद्मों की पूजा।

"भगवान ने भक्त को इतना-कुछ दे डाला। जो दे डाला उसका लेखा-जोखा सम्भव नहीं। अनेक जन्म तक भक्ति करके भी किसी को इतना बड़ा वरदान नहीं मिलता। वैसा वरदान जो तुमने अनायास ही मुझे दे डाला। तो मैं अपने सौभाग्य को कैसे सराहूँ? और कैसे सराहूँ तुम्हारे सौहार्द को?

"और अब तुम कहते हो कि तुम भगवान नहीं हो। तुम अपने-आप को साधारण मानव बतला रहे हो। मैं नहीं मानती। मानव होगे किसी के लिए। मेरे लिए नहीं। मेरे लिए तो तुम भगवान हो। उस दिन से जिस दिन से तुमको उस रूप में देखा है। मेरे लिए तो तुम भगवान ही रहोगे। उस दिन तक जिस दिन मैं तुम्हारे चरणों में मस्तक न्यस्त करके इस मरणशील शरीर का त्याग कर दूँगी।

"तो मुझको भुलावे में मत डालो। मैं तुम्हारी लीला को समझने लगी हूँ। तुम्हारी माया की मोहिनी को भी। कोई और होगा जो तुम्हारी माया से मोहित हो जाए। कोई और होगा जो तुमको मानव मान ले। मैं वह नहीं हूँ। मैं तो साधना हूँ। मुझको मोह में डालने के लिए माया मत रचो। मैं मोह में पड़ूँगी नहीं। तुम जो भी रूप धारण करोगे उसी रूप में तुमको पहिचान लूँगी। मैं...

"द्वार पर खटखटाहट हुई। अरुण लौट आया था। इतनी जल्दी। रञ्जना को अच्छा नहीं लगा उसका वह लौट आना। किन्तु वह विवश थी। उसने दराज बन्द कर दी। किन्तु अपने हाथ का वह पत्र उसने अनायास अपने ब्लाउज में रख लिया। उसका हैण्डबैग पास में पड़ा था, तो भी। किन्तु रञ्जना ने उस हैण्डबैग का विश्वास नहीं किया। वह खो भी सकता था।

तब रञ्जना ने उठकर द्वार खोल दिया। अरुण खड़ा था। चिन्तित मुख। भीगे हुए केशों के अग्र चू रहे थे। साबुन की डिबिया भी। रञ्जना एक ओर हट गई। अरुण भीतर चला आया। रञ्जना को द्वार पर खड़ा देखकर वह बोला : "भीतर आ जा, रञ्जना!"

रञ्जना ने कहा : "तुम कपड़े पहन लो।"

"कपड़े तो मैं बरामदे में जाकर पहन लूँगा।"

रञ्जना चुपचाप आकर कुरसी पर बैठ गई। अरुण अपने कपड़े उठाकर बरामदे में चला गया। रञ्जना ने ब्लाउज में हाथ डालकर पत्र टटोला। पत्र वहीं था। वह अन्यमनस्क-सी होकर कमरे की कड़ियाँ गिनने लगी। वह आई तब उसके मुख पर हर्ष छलक रहा था। अरुण को पा जाने का हर्ष। अब उसके मुख पर विषाद की छाया उभरने लगी थी। जैसे अरुण सहसा पराया हो गया हो।

अरुण ने भीतर आकर पूछा : "भूत का भय नहीं लगा, रञ्जना !"

रञ्जना ने सूखी हँसी हँसकर कहा : "भय लगा तभी तो द्वार बन्द कर रखा था।"

"द्वार क्यों बन्द किया ? सच, क्यों बन्द किया, रञ्जना !"

रञ्जना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उठकर खड़ी हो गई। अरुण भी तैयार था। वे दोनों मकान से बाहर निकल आए। और रञ्जना की कार में बैठ गए। कार स्टार्ट हो गई। और कुछ क्षण उपरान्त माल रोड पर दौड़ने लगी। अरुण ने नहीं पूछा कि वह कहाँ जा रही है। रञ्जना ने भी नहीं बतलाया। वह तो एकबारगी मौन थी।

असाधारण मौन था यह। रञ्जना साधारणत: मौन नहीं रहा करती। कार दौड़ाते-दौड़ाते अनवरत बातें करना ही उसका साधारण स्वभाव था। किन्तु आज वह मौन रहकर ही रास्ता पार कर रही थी। निर्निमेष नयनों से नाक की सीध में देखती हुई। कार की स्पीड को उत्तरोत्तर बढ़ाती हुई। मानो उसका मन बढ़ती हुई स्पीड से सान्त्वना प्राप्त कर रहा हो।

अरुण ने भी रञ्जना का मौन लक्ष्य नहीं किया। कोई अन्य दिन होता तो वह लक्ष्य कर लेता उस मौन को। किन्तु आज नहीं। आज वह अपनी उधेड़-बुन में लगा हुआ था। उसे अच्छा ही लगा था रञ्जना का आना। रञ्जना ने उसको अपने आपसे बाहर निकालने का उपक्रम किया था। और बाहर वह निकलना चाहता भी था, किन्तु रञ्जना तो स्वयं अपने-आप में जा डूबी। अरुण भी फिर से अपने-आप में डूब गया।

कॉफी हाउस में बैठकर रञ्जना ने अरुण के लिए टोस्ट और कॉफी इत्यादि का आर्डर दे दिया। अपने लिए उसने केवल कॉफी मँगवाई। अरुण ने पूछा : "यह क्यों, रञ्जना ! तू कुछ खाएगी नहीं ?"

रञ्जना ने उत्तर दिया : "भूख नहीं है, अरुण !"

"भूख तो लगी थी ?"

"भाग गई।"

"क्यूँ ?"

"कारण मत पूछो।"

"मैं तो पूछूँगा।"

"मैं नहीं बतलाऊँ तो ?"

"मैं तुझसे बोलना बन्द कर दूँगा।"

रञ्जना मौन रही। अरुण की धमकी का जैसे कोई अर्थ ही न हो। अरुण चुपचाप टोस्ट खाने लगा। रञ्जना का व्यवहार सहसा उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

तब रञ्जना को जने क्या सूझी। वह अपने ब्लाउज में से वह पत्र निकालकर पढ़ने लगी। एक ओर सरक कर। पत्र को अरुण से छिपाती हुई-सी। अरुण ने पूछा : "क्या पढ़ रही है, रञ्जना !"

रञ्जना ने उत्तर दिया : "पत्र है किसी का।"

अरुण ने नहीं पूछा कि किस का पत्र है। रञ्जना ने अपने-आप ही कहा : "एक लड़के का पत्र है।"

अरुण ने नहीं पूछा कि लड़का कौन है। रञ्जना ने अपने-आप ही कहा : "वह लड़का मुझसे प्रेम करता है।"

अरुण ने सुन ली रञ्जना की बात। किन्तु कोई टीका नहीं की। न कोई प्रश्न पूछा। न अरुण के मुख का भाव बदला। रञ्जना ने फिर कहा : "वह लड़का मुझसे ब्याह करना चाहता है, अरुण !"

अरुण ने कहा : "तो कर ले ब्याह ! तू भी उससे प्रेम करती है ना ?"

रञ्जना ने सन्न रहकर अरुण की ओर देखा। वह उसके मुख से

कुछ और सुनना चाहती थी। किन्तु अरुण ने उसे निराश कर दिया। घोरतर निराश कर दिया।

तब रञ्जना बोली : "तुम्हारी सलाह चाहती हूँ, अरुण !"

अरुण ने कहा : "मेरी सलाह ! इसमें मैं भला...

"नहीं, तुम्हारी सलाह जरूरी है। लो पहले यह पत्र सुन लो।"

रञ्जना पत्र पढ़ने लगी : "मेरे गोपाल ! तुम्हारे पाद-पद्मों की पूजा करके मैंने क्या-कुछ नहीं पाया। मेरी श्रद्धा का सम्बल...

अरुण चौंक उठा। फिर हँसकर बोला : "अरे ! तू तो सचमुच चोर निकली, रञ्जना !"

रञ्जना के लिए यह प्रतिक्रिया भी अप्रत्याशित थी। वह समझती थी कि अरुण सकपकाएगा, झेंपेगा, बातें बनाएगा। किन्तु अरुण ने जैसे समझा ही नहीं कि बात क्या है।

तब रञ्जना ने भ्रू-कुञ्चित करके किञ्चित् कर्कश स्वर में पूछा : "कौन है यह ?"

अरुण ने प्रतिप्रश्न पूछा : "कौन ?"

"यह पत्र लिखने वाली ?"

"अरे ! यह तो साधना का पत्र है, रञ्जना !"

"साधना ! साधना कौन है ?"

"जीतपुर है ना ? मेरे मामा का गाँव ? वहाँ एक शास्त्रीजी हैं। बहुत बड़े विद्वान्। संस्कृत के बहुत बड़े...

रञ्जना बीच में ही बोल उठी : "शास्त्रीजी को छोड़ो। साधना कौन है ?"

अरुण ने तुरन्त कह दिया : "शास्त्रीजी की लड़की।"

"तुम उसे कैसे जानते हो ?"

"वाह ! मैं नहीं जानूँगा ! बचपन से हम दोनों एक-साथ खेले हैं, एक-साथ पूजा करते रहे हैं।"

"उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?"

"सम्बन्ध ! मैं समझा नहीं तेरी बात।"

"उसका ब्याह हो गया ?"

"अभी कहाँ ! अभी तो वह कुँवारी है।"

"सगाई हो गई ?"

"हाँ, सगाई हो गई।"

"किस के साथ ?"

"एक लड़का है।"

"तुम उस लड़के को जानते हो ?"

"नहीं, मैं उसे नहीं जानता।"

"तो वह तुम्हें ऐसे पत्र क्यों लिखती है ?"

"एक दिन उसकी प्रतिमा खो गई थी। चुरा ली थी किसी ने। किसी ने क्या, एक आर्यसमाजी ने चुरा ली थी। उस दिन से वह मुझको ही कृष्ण मानकर मेरी पूजा करने लगी।"

"हूँ !"

रञ्जना ने और प्रश्न नहीं पूछा। अरुण भी मौन रहा। उसका अन्तर आक्रोश कर रहा था : "अरुण ! तूने आज झूठ बोला है। अपने जीवन में प्रथम बार !"

किन्तु अरुण की समझ में नहीं आया कि वह सच कैसे कह देता। रञ्जना के सामने। रञ्जना को देखते ही न जाने उसको क्या हो जाता था ! वह वही बात कहने लगता था जो रञ्जना उससे कहलवाना चाहती थी।

रञ्जना ने शास्त्रीजी तथा उनके परिवार के विषय में अनेक प्रश्न पूछे। अरुण ने सब कुछ बतला दिया। जो कुछ वह जानता था वह सब बतला दिया। रञ्जना ने और कुछ नहीं पूछा। न कुछ कहा। वह चुपचाप उठ कर चली गई। अरुण को वहीं छोड़ कर।

अरुण ने घर लौट कर वह सारी बात साधना को लिख दी। यह बात भी कि उसने झूठ बोला है। साधना का कोई उत्तर नहीं आया। अरुण ने फिर पत्र डाला। पत्र लौट आया। पत्र पाने वाली का घर-द्वार बन्द था। अरुण सांझ के समय जौनपुर जा पहुँचा। पत्र पाने के उपरान्त पहली ट्रेन से। उस का कलेजा धक्-धक् कर रहा था।

: २ :

अरुण जीतपुर पहुँचा उसके दो-तीन दिन पूर्व रञ्जना शास्त्रीजी के घर पर पहुँच चुकी थी। अपने प्रौढ़ पिता, लाला नारायण प्रसाद, के साथ। शास्त्रीजी के द्वार पर उनकी कार रुकी तो पास-पड़ौस के सारे स्त्री-पुरुष और बच्चे वहाँ जमा हो गए। और फिर वह समाचार गाँव भर में फैल गया। समाचार की व्याख्या भी हुई। लोग कहने लगे कि गोपालकृष्ण शास्त्री के पाण्डित्य की ख्याति सुनकर दिल्ली के कोई बहुत बड़े सेठ उनके शिष्य बनने आए हैं।

रञ्जना ने शास्त्री जी के घर में प्रवेश करते ही परिवार के सारे प्राणियों को पहिचान लिया। अरुण के मुख से वह सब का नाम सुन चुकी थी। और अरुण का उल्लेख करके ही उसने अपना तथा अपने पिताजी का परिचय भी दिया। शास्त्रीजी का परिवार पुलकित हो उठा। साधना ने रञ्जना को अपने आलिंगन में बाँध लिया। आँखें डबडबा आई साधना की।

रञ्जना को जानती थी साधना। अरुण के पत्रों से। किन्तु रञ्जना को यह ज्ञात नहीं था कि साधना उसे जानती है। और न साधना ने ही उसको यह भेद बतलाया। साधना तो उसे अपने सन्मुख बैठा कर उसका मुख निहारती रही। निर्निमेष। आनन्द के अतिरेक से विभोर होकर। जिस लड़की ने अरुण का प्रेम पाया था वह साधना के प्रेम का भी पात्र थी। अनायास ही। साधना को उस प्रकार अपनी ओर देखते देखकर रञ्जना ने पूछा : "क्या देख रही है, बहिन !

साधना बोली : "तुझे देख रही हूँ, रञ्जना ! तुझे निरख-निरख कर तो मेरा जी ही नहीं भरता।"

रञ्जना ने लजा कर मुख नीचा कर लिया। किन्तु साधना ने उसकी चिबुक का स्पर्श करके उसका मुख फिर ऊपर उठा दिया। और फिर उस को निरखने लगी। आँखों में आह्लाद के आँसू भर कर। रञ्जना का भी हृदय भर आया। हठात् वह साधना के सीने में सिर छुपा कर सिसकने लगी।

सरस्वती अतिथियों के लिए भोजन बनाने में व्यस्त थीं। द्वार पर

कार खड़ी देख कर मोहल्ले की चौधरायन अपने-आप ही बहुत-सा आटा-सीधा, घी-चीनी शास्त्रीजी के रसोईघर में रख गई थी। अरुण के नाना-नानी और मामा-मामी भी आए थे। यह सुनकर कि दिल्ली से आने वाले लोग अरुण के परिचित हैं। उनकी इच्छा थी कि अतिथियों का भोजन उनके घर पर ही हो। किन्तु सरस्वती ने उनका रास्ता रोक दिया। वे अरुण के मामा से बोलीं : "देवर ! आपके घर तो रोज-रोज अतिथि आते हैं। आप भाग्यशाली हैं। भगवान् के प्यारे। आज भगवान् ने एक दीन-हीन ब्राह्मण पर दया की है। आप भगवान् की दी हुई भीख हम से मत छीनिये, देवर !"

शास्त्रीजी अलिन्द में आसन बिछा कर नारायण प्रसाद जी के साथ तत्त्वचर्चा में रत हो गए। तुरन्त ही। कुशल-मंगल की प्रथम बात-चीत के उपरान्त। नारायण प्रसाद जी के मुख से यह सुन कर कि वे कुछ तत्त्वचर्चा करने आए हैं। शास्त्रीजी ने पूछा : "आप किस सम्प्रदाय के है, नारायण प्रसाद जी !"

नारायण प्रसाद जी एक क्षण असमञ्जस में पड़ गए। फिर वे बोले : "शास्त्रीजी ! मैं तो आर्यसमाजी हूँ। बीस बरस का पुराना आर्य समाजी।"

शास्त्रीजी का मुख उतर गया। आर्यसमाजी के साथ वे क्या तत्त्वचर्चा करेंगे ? किन्तु दूसरे ही क्षण नारायण प्रसाद जी ने कह दिया : "मेरे पिताजी सनातनी थे। कट्टर सनातनी। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी। राधाकृष्ण की युगलमूर्ति के भक्त।"

शास्त्रीजी ने पूछा : "फिर आप आर्यसमाजी कैसे बन गए ?"

"महर्षि दयानन्द का जीवनवृत्त पढ़ कर।"

"सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर नहीं ?"

"वह मैंने पीछे पढ़ा।"

शास्त्रीजी मौन हो गए। नारायण प्रसाद जी ने पूछा : "आपने सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ा है ?"

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया : "पढ़ा है।"

"और महर्षि का जीवनवृत्त ?"

"वह भी पढ़ा है।"

"आपका क्या मत है ?'

"महर्षि का जीवनवृत्त दिव्य था। भगवान् की भेजी हुई विभूति थे वे। भारत के सुप्तप्राय सनातन आर्यधर्म में तेज का पुनरुत्थान करने के लिए।"

"और सत्यार्थ प्रकाश ?"

"मेरी स्पष्टवादिता को क्षमा कीजिएगा, नारायण प्रासाद जी ! मेरे मत में सत्यार्थ प्रकाश वितण्डवादी बुद्धि की सारहीन कतरब्योंत के अतिरिक्त कुछ नहीं।"

नारायण प्रसाद जी कुछ चिन्तित हो गए। उनका अन्तर गवाही देता था कि शास्त्रीजी की बात में सार है। उनको स्वयं सत्यार्थ प्रकाश के विषय में अनेक शंकाएँ थीं। प्रथम वार उस ग्रन्थ को पढ़ा तबसे। किन्तु उन्होंने महर्षि के महान् चरित्र का मनन करके उन शंकाओं को शान्त करने की चेष्टा की थी। सतत्। बारम्बार। वे अपना समाधान करने के लिए अपने-आप से कहते रहते थे : "महापुरुष का वचन भी महान् होना चाहिए।"

शास्त्रीजी की बात ने उन शंकाओं को नई प्ररणा दी। वे बोले : "शास्त्रीजी ! आपके कथन में विरोधाभास है। आप महर्षि को भगवान् की विभूति मानते हैं। किन्तु उनके वचन को कोरा वितण्डावाद। यह किस प्रकार सम्भव हुआ ?"

शास्त्रीजी ने कहा : "इस प्रकार का एक अन्य प्रमाण हमारे सामने प्रस्तुत है। इसी समय। महात्मा गाँधी के चरित्र का मनन कीजिए। आपको कोई शंका नहीं रह जाएगी कि वे भी भगवान् की विभूति हैं। हिन्दु-धर्म को समाच्छादित करने वाली संकीर्णता को दूर करने के लिए ही भगवान् ने उन्हें भेजा है। किन्तु महात्माजी का वचन कोरा बौद्धिक वितण्डावाद है। उसमें हिन्दु-धर्म का कोई तत्त्व नहीं। सनातन धर्म की दृष्टि से वह प्रकृत पाखण्ड मात्र है।"

"मुझे भी महात्माजी के वचन का पाठ करके सदा ऐसा ही लगा है

इसीलिए मैं कभी उनके प्रति श्रद्धावान् नहीं हो सका।"

"आपने उनके चरित्र का मनन नहीं किया?"

"उनका वचन पढ़ने के उपरान्त उनके विषय में विरक्ति हो गई। मन विद्रोह से भर गया। मैं उनके विषय में अत्यन्त असहिष्णु हूँ।"

"आप महर्षि का वचन पढ़ने के पूर्व यदि उनके चरित्र का मनन नहीं कर चुके होते तो उनके वचन के प्रति भी आपका मन विद्रोह से भर जाता। उनके प्रति भी आप असहिष्णु हो जाते।"

"सम्भव है। किन्तु मेरा प्रश्न तो रह गया, शास्त्रीजी! यह सब होता कैसे है—यही किसी व्यक्ति के चरित्र का महान् होना, और वचन का साधारण अथवा भ्रान्त होना?"

"इसीलिए कि भगवान् किसी की भावना विकसित कर देते हैं, और किसी की बुद्धि। महान् भावना से महान् चरित्र की सृष्टि होती है। विकसित बुद्धि वचन को बृहद्-दृष्टि बना देती है।"

"तो क्या यह भी सम्भव है कि किसी का वचन महान् हो, और चरित्र क्षुद्र?"

"सर्वथा सम्भव है। ऐसे मनीषियों के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं।"

"क्या दोनों का एक-समान विकास सम्भव नहीं? बुद्धि और भावना का एक-समान विकास? वचन तथा चरित्र की एक-समान परिपुष्टि?"

"वह भी सम्भव है, नारायण प्रसाद जी! आत्म-साक्षात्कार होने पर। भगवान् का दर्शन होने पर। तब भावना और बुद्धि एक-समान शुद्ध हो जाती हैं। शुद्ध भावना दिव्य चरित्र की सृष्टि करती है। और शुद्ध बुद्धि दिव्यवाक् की।"

नारायण प्रसादजी मौन हो गए। विचारमग्न हो कर। इसी समय रञ्जना और साधना वहाँ आ पहुँचीं। रञ्जना ने अपने पिताजी से पूछा: "डैडी! शास्त्रीजी क्या कहते हैं?"

नारायण प्रसाद जी ने पूछा: "किस विषय में, बेटी!"

"हमारे साथ चलने के विषय में?"

"वह तो मैंने अभी तक इनसे पूछा ही नहीं।"

"मैंने तो साधना बहिन से बात कर ली ।"

"साधना बेटी क्या कहती है ?"

"शास्त्रीजी उचित समझें तो वह प्रस्तुत है ।"

शास्त्रीजी मुँह बाए नारायण प्रसाद जी की ओर देख रहे थे । नारायण प्रसाद जी बोले : "शास्त्रीजी ! जिस समय मैं आर्यसमाजी बना उस समय मेरा दृढ़ विश्वास था कि मैंने हिन्दु-धर्म के मर्म को समझ लिया । किन्तु मेरे देखते-देखते मेरे तीनों पुत्र म्लेच्छ बन गए । अचार-विचार-विहीन । और यह लड़की......

नारायण प्रसाद जी ने रुक कर रञ्जना की ओर देखा । ओर वे मुस्कराने लगे । रञ्जना ने कहा : "मेरे विषय में भी कह दीजिए, डैडी ! आप रुक क्यों गए ? कहिए ना, क्या कहना चाहते है ? आप यही तो कहना चाहते हैं कि मैं नास्तिक बन गई ?"

नारायण प्रसाद जी ने कहा : "बेटी ! तेरे भाइयों की बात सोचता हूं तो तू फिर भी बहुत अच्छी लगती है । किन्तु...

"किन्तु साधना बहन को देखकर बहुत बुरी लगती हूँ ! हैं ना, डैडी !"

साधना ने रञ्जना के मुख पर हाथ रख दिया । नारायण प्रसाद जी बोले : "शास्त्रीजी ! मैं आर्यसमाजी हूँ । फिर भी मेरा मन कहता है कि मेरे बच्चे यदि मुसलमान या खिस्तान बन जाते तो मुझको इतना दुःख नहीं होता । वे भगवान् का नाम तो लेते । किसी-न-किसी आचार पर आरूढ़ तो रहते ।"

शास्त्रीजी ने पूछा : "किन्तु यह हुआ कैसे ?"

"यही मैं नहीं समझ पा रहा । मैं नित्यप्रति सन्ध्योपासना करता रहा हूं । अग्निहोत्र भी । अपने सारे बच्चों को मैंने स्वयं ही सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार-विधि पढ़ाए । इनके समस्त संस्कार भी विधिवत् करवाए । किन्तु फिर भी उम्र सँभालते ही ये सब-के-सब आर्य परम्परा से पराङ्मुख हो गए ।"

"आर्यसमाज की दूसरी पीढ़ी में सर्वत्र यही घटना घटी है । कोरे बुद्धिवाद का यही परिणाम होता है, नारायण प्रसाद जी !"

"मैं समझा नहीं आपकी बात।"

"आप वेद के वचन पर क्यों विश्वास करते हैं ?"

"इसलिए कि वे अपौरुषेय है।"

"इसका क्या प्रमाण है कि वेद अपौरुषेय है ?"

"ऋषियों की उक्ति।"

"इसका क्या प्रमाण कि जिनको आप ऋषि मानते हैं वे ऋषि ही थे ?"

"उनकी बातें बुद्धिग्राह्य हैं।'

"आपके लिए। किन्तु किसी अन्य को वे बुद्धि के विपरीत भी लग सकती हैं। बुद्धि तो सबकी एक जैसी नहीं होती। तब बात का फैसला कौन करेगा ?"

नारायण प्रसादजी मौन हो गए। शास्त्रीजी के प्रश्न का उत्तर उनके पास नहीं था। शास्त्रीजी ने भी कुछ नहीं कहा। रञ्जना ने अधीर होकर पूछा :

"कौन फैसला करेगा, शास्त्रीजी !"

शास्त्रीजी ने रञ्जना से पूछा : "साधारण जीवन में जब किसी बात को लेकर विवाद होता है तो फैसला किस प्रकार होता है, बेटी !"

"अपनी-अपनी बात के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करके।"

"सबसे अकाट्य प्रमाण कौन-सा होता है ?"

"प्रत्यक्ष प्रमाण।"

"वही प्रमाण वेद तथा अन्याय श्रुतियों एवं शास्त्रों के विषय में भी अकाट्य है।"

बात रञ्जना की समझ में नहीं आई। वह अपने पिताजी की ओर देखने लगी। नारायण प्रसादजी ने पूछा : "तो क्या वेद के वचन को प्रत्यक्ष करना सम्भव है ?"

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया : "जब तक उस वचन को प्रत्यक्ष नहीं किया जाता तब तक वह समझ में ही नहीं आता। तब तक वेद के विषय में कुछ भी कहना कोरा वितण्डावाद है। उससे किसी को लाभ नहीं हो

सकता। हानि ही हो सकती है।"

नारायण प्रसादजी एक क्षण मौन हो गए। फिर उन्होंने पूछा : "तो क्या आप यह मानते हैं कि महर्षि दयानन्द के लिए यह उचित नहीं था कि वे वेद की व्याख्या करते ?"

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया : "आत्मसाक्षात्कार के पूर्व उनको यह अधिकार नहीं था। इसलिए उन्होंने......।"

शास्त्री जी बीच में ही रुक गए। नारायण प्रसादजी ने पूछा : "इसीलिए उन्होंने क्या किया ?"

शास्त्रीजी बोले : "वेद के अर्थ का अनर्थ ही नहीं किया अपितु सन्त कबीर तथा गुरु नानक जैसे सिद्ध पुरुषों के वचन का उपहास भी किया।"

"कबीर और नानक के वचन तो वेद-विरुद्ध हैं।"

"जो वेद को नहीं जानते वे भला किस प्रकार यह निर्णय कर सकते हैं ?"

"आपकी इस विषय में क्या राय है ?"

"मैं मानता हूँ कि महात्मा कबीर तथा गुरु नानक अध्यात्म-साक्षात्कार पर आरूढ़ पुरुष थे। उनके वचन अपने-आप में वेद हैं। वेद के समान ही परमपावन।"

"तो क्या वेद का कोई निश्चित अर्थ ही नहीं, शास्त्रीजी !"

"अर्थ निश्चित है। अध्यात्म का साक्षात्कार करने पर सिद्ध पुरुष के मानस में जो-जो दिव्यवाक् स्फूर्त होता है वह वेद है।"

"और अध्यात्म-साक्षात्कार का लक्षण ?"

"अध्यात्म-साक्षात्कार होने पर पुरुष का अन्तर गवाही देता है कि जो कुछ जानना था सो जान लिया, अब जानने के लिए कुछ नहीं रह गया; जो कुछ पाना था वह पा लिया, अब पाने के लिए कुछ नहीं रह गया; जो कुछ करना था वह कर लिया, अब करने के लिए कुछ नहीं रह गया।"

"फिर संसार में सिद्ध माने जाने वाले ये अनेक महापुरुष परस्पर-विरोधी बातें क्यों कहते हैं ?"

"बुद्धिगम्य भाषा की अपूर्णता के कारण ही उनकी बातें परस्पर-विरोधी जान पड़ती हैं। वस्तुत: तो उनमें कोई विरोध नहीं।"

नरायण प्रसादजी मौन हो गए। तब रञ्जना ने पूछा : "शास्त्रीजी! अध्यात्म-साक्षात्कार किस प्रकार किया जा सकता है।"

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया : "अन्तर्मुख होकर।"

"अर्थात् ?"

"साधारण जीवन में हम बहिर्मुख रहते हैं, बेटी! बुद्धि मूलत: बहिर्मुखी है। वह अपने अन्तर में निगूढ आनन्द की अवहेलना करके बाह्यजगत् की मृगमरीचिका में भटकती रहती है। उसको शान्त कर देने पर मनुष्य अन्तर्मुख हो जाता है।"

"बुद्धि का शमन कैसे सम्भव है ?"

"अहंकार का विनाश करके, बेटी!"

"और अहंकार का विनाश, शास्त्रीजी!"

शास्त्रीजी मुस्कराने लगे। फिर वे बोले : "सत्त्वशुद्धि से। तुम पूछोगी सत्त्वशुद्धि कैसे होती है ? सत्त्वशुद्धि धर्म का आचरण करने से होती है। धर्म का लक्षण है-परिग्रह छोड़कर समर्पण करना। जब मनुष्य अपने सुख का अन्वेषण करना छोड़कर दूसरे के सुख की सोचने लगता है तो वह धर्म के मार्ग पर पदार्पण करता है।"

"प्रेम धर्म है, अथवा अधर्म ?"

"कौनसा प्रेम, बेटी!"

"स्त्री और पुरुष का परस्पर प्रेम।"

"इस प्रेम को हम प्रणय कहते हैं। प्रणय में यदि परिग्रह की भावना हो तो वह दूषित होने लगता है। किन्तु प्रणय-पात्र का सुख-दुख ही जहाँ प्रणयी का सुख-दुख है, वह प्रणय धर्म बन जाता है। उससे हृदय में उदार भावनाओं का उदय होता है। उससे मनुष्य के सत्त्व की शुद्धि होती है।"

रञ्जना ने अन्य प्रश्न नहीं पूछा। फिर कुछ समय तक उन सब के बीच इधर-उधर की बातें होती रहीं। इसी समय डाकिया साधना के नाम

का एक पत्र लेकर आ पहुँचा। साधना ने पत्र पढ़ा। और वह मौन बैठी रही। शास्त्रीजी ने पूछा : "अरुण का पत्र है ना, बेटी!"

साधना ने उत्तर दिया : "हाँ, पिताजी!"

"सब कुशल-मंगल है?"

"हाँ, पिताजी!"

"अब तो उसके पत्र देर-देर में आते हैं।"

"वह परीक्षा की तैयारी में व्यस्त है, पिताजी! बी० ए० की अन्तिम परीक्षा है ना इस वर्ष।"

शास्त्रीजी ने और कुछ नहीं पूछा। सरस्वती भोजन तैयार कर चुकी थीं। उन्होंने आकर कहा कि अतिथि लोग भोजन कर लें। किन्तु रञ्जना ने अपने पिताजी के साथ भोजन करने से इन्कार कर दिया। वह बोली कि वह तो साधना के साथ बैठकर खाएगी। शास्त्रीजी नारायण प्रसादजी को भोजन करवाने के लिए रसोई-घर में ले गए। रञ्जना और साधना वहीं बैठी रहीं।

रञ्जना ने पूछा : "अरुण के पत्र में क्या-क्या लिखा है, साधना!"

साधना ने उत्तर दिया : "विशेष कुछ नही, रञ्जना! योगवाशिष्ठ का एक उपाख्यान मैंने अरुण को सुनाया था। कई लम्बे-लम्बे पत्र लिखकर। उसी के विषय में उसने कुछ शंकाएँ प्रस्तुत की हैं।"

साधना ने झूठ बोल दिया। जीवन में प्रथम बार। वह मन-ही-मन भयभीत थी कि रञ्जना अरुण का पत्र पढ़ने की हठ न कर बैठे। वह रञ्जना को ना नहीं कह सकेगी। और रञ्जना को ज्ञात हो जाएगा कि अरुण साधना से भी प्रेम करता है, और साधना अरुण से। यही तो वह भेद था, जिसको अरुण छुपाए चला जा रहा था। साधना भी उस भेद को छुपाना चाहती थी। प्राण-पण से।

अरुण अपना भेद इसलिए छुपा रहा था कि उसे रञ्जना से भी प्रेम हो गया था। वह रञ्जना का जी दुखाना नहीं चाहता था। रञ्जना को रञ्जित रखने के लिए वह बारम्बार मिथ्या-भाषण करता रहता था।

साधना अपना भेद इसलिए छुपाना चाहती थी कि वह अरुण से प्रेम

करती थी। वह अरुण के सुख में ही अपना सुख मानती थी। अरुण को यदि रञ्जना से प्रेम करके सुख मिलता है तो वह अरुण का पथ नहीं रोकेगी। वह अपने-आपको ही उस पथ पर से अपसरित कर लेगी। यही थी उसकी शिक्षा। यही था उसका संस्कार।

किन्तु रञ्जना ने वह पत्र पढ़ने की हठ नहीं की। और वे दोनों बैठी-बैठी अरुण के विषय में विविध वार्तालाप करती रहीं। साधना अरुण की बुद्धि तथा चरित्र की प्रशंसा कर रही थी। प्रखर थी अरुण की बुद्धि। क्षुरधार जैसी प्रखर। निर्मल था अरुण का चरित्र। स्वांति नक्षत्र की जल-धार-सी निर्मल। रञ्जना अरुण के हृदय की प्रशंसा कर रही थी। विशाल था अरुण का हृदय। दूसरे के दुख को देखते ही द्रवित हो उठने वाला। दूसरे को अपनी संवेदना के वारिवर्षण से सराबोर कर देने वाला।

और वे दोनों ही विभोर हो रही थीं। दोनों के बीच गहन स्नेह का उद्रेक हो रहा था। अपने-अपने प्रणय-पात्र की प्रशंसा सुनकर। एक-दूसरी के मुख से।

वे भोजन करने के लिए बैठीं तो रञ्जना हठ करने लगी कि वह साधना की थाली में ही खाएगी। उसको इस आचारनिष्ठ ब्राह्मण परिवार की परम्परा का ज्ञान नहीं था। वह शहर की रहने वाली थी। वहाँ पर-स्पर सौहार्द प्रकट करने का एक प्रत्यक्ष पथ था। एक साथ खाना-पीना। सौहार्द-प्रदर्शन की किसी मौन एवं गम्भीर प्रणाली से रञ्जना का परिचय नहीं था।

रञ्जना का प्रस्ताव सुनकर सरस्वती अवाक् रह गईं। उनकी समझ में नहीं आया कि धर्म की रक्षा किस प्रकार सम्भव हो सकेगी। अतिथि का अपमान करना अधर्म था। किन्तु अन्य जाति के अतिथी के साथ एक थाली में भोजन करना ब्राह्मण के लिए अविहित था। ब्राह्मण को तो अन्य जाति का छुआ भी नहीं खाना चाहिए। सरस्वती किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर साधना का मुँह ताकने लगी।

साधना ने हँसकर कहा, "परस दीजिए, माताजी! एक ही थाली में परस दीजिए। रञ्जना मेरी धर्म की बहन है।"

सरस्वती को साधना के प्रस्ताव पर आश्चर्य हुआ। किन्तु वे कुछ बोलीं नहीं।

उन्होंने एक ही थाली में भोजन परस दिया। और वे दोनों खाने लगीं।

तब रञ्जना ने हठ किया कि वह साधना के हाथ से उसके अपने मुख में दिया हुआ कौर खाएगी। अपने हाथ से नहीं खाएगी। साधना हँसकर उसके मुख में कौर देने लगी। रञ्जना ने कहा : "और तू तो खा ही नहीं रही। सद्दो!"

साधना बोली : "वाह! और कौन खा रहा है।"

"अरी यह तो मैं खा रही हूँ।"

"तो तेरा मेरा पेट क्या अलग हैं?"

"मेरा पेट भर जाने से तेरा पेट भर जायेगा?"

"भर जाएगा।"

"मैं नहीं मानती।"

"पेट तो भरता नहीं, रञ्जना! भरता तो मन है। और मेरा मन तो तुझे खाना खिला कर तृप्ति से फटा जा रहा है।"

"सभी तेरे जैसे हो जायँ तो इस देश में भोजन की समस्या ही नहीं रहे।"

साधना हँसने लगी। कुछ बोली नहीं।

भोजन के उपरान्त नारायण प्रसाद जी तथा रञ्जना ने शास्त्रीजी से प्रस्ताव किया कि वे सपरिवार उनके साथ दिल्ली चले चलें। नारायण प्रसाद जी दिल्ली में संस्कृत की एक पाठशाला खोलना चाहते थे। उनके मत में शास्त्री जी से योग्यतर अध्यापक उनको अन्यत्र नहीं मिल सकता था। साथ ही उनको स्वयं भी शास्त्री जी के साथ अनवरत तत्त्वचर्चा का सौभाग्य प्राप्त होगा।

शास्त्री जी ने साधना की ओर देखा। अपनी स्त्री के विषय में वे जानते थे कि वे उस प्रस्ताव का स्वागत करेंगी। साधना ने एक क्षण-कुछ नहीं कहा। वह कुछ चिन्तातुर-सी प्रतीत हुई। तब रञ्जना ने साधना का हाथ पकड़ कर कहा : "मान जा, सद्दो! तू नहीं मानेगी तो मैं फिर कभी तेरे

साथ खाना नहीं खाऊँगी। हाँ!"

साधना ने हँसकर अपनी स्वीकृति दे दी। और दो घड़ी में शास्त्री-जी का परिवार दिल्ली जाने के लिए तैयार हो गया। उनकी गृहस्थी में विशेष सामान नहीं था। कुछ कपड़े-लत्ते और बर्तन-भाँडे बाँधकर वे तीनों तुरन्त तैयार हो गए। और दिल्ली वालों की मोटर उनको जीतपुर से निकाल ले गई। न जाने कब तक के लिए।

: ३ :

अरुण जब जीतपुर में पहुँचा तो शास्त्री जी के द्वार पर ताला लगा था। ननिहाल वालों ने उसको शास्त्री जी के दिल्ली जाने का समाचार बतलाया। सेठजी के साथ आने वाली लड़की का नख-शिख वर्णन भी। सुनकर वह तुरन्त समझ गया कि वह लड़की रञ्जना ही है। और वह उल्टे पाँव दिल्ली लौट गया।

अरुण स्टेशन पर पहुँचा तो गाड़ी निकल चुकी थी। रात के ग्यारह बजे वाली गाड़ी। दिल्ली के लिए दूसरी गाड़ी सुबह के पाँच बजे आती थी। कोई बस मिलने की सम्भावना भी नहीं रह गई थी। अन्तिम बस आठ-नौ बजे निकल जाती थी। फिर भी अरुण किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं हुआ। वह दिल्ली की सड़क पकड़ कर चल दिया। पाँव-पाँव।

दिल्ली वहाँ से तीस मील थी। अँधेरी रात। सुनसान सड़क। फसल उठने में अभी देर थी। इसलिए गाँव की गाड़ियाँ भी शहर की मण्डियों की ओर नहीं जा रही थी। किन्तु अरुण को अच्छा लगा वह सुनसान। उसके अन्तर में उद्वेग उद्वेलित था। और वह कोई किनारा खोज रहा था। सड़क पर यातायात होता तो उसकी खोज में बाधा उपस्थित हो जाती।

रञ्जना ने यह क्या किया? उससे कुछ क्यों नहीं कहा रञ्जना ने? वह तो उससे कुछ भी नहीं छुपाती थी। फिर यही बात क्यों छुपा ली? वह जीतपुर जाना चाहती थी तो उससे कह देती। वह चला चलता उसके साथ। वह इस प्रकार चोरी-चोरी क्यों गई? साधना का भेद जानने के लिए? तो क्या साधना ने अपना भेद बतला दिया? वह भेद जिस को वह स्वयं इतने दिन तक छुपाए रहा था। झूठ बोल-बोल कर। भेद नहीं

छुप सका । उसका झूठ भी नहीं छुप पाया । रञ्जना उसे क्या कहेगी ? झूठा ? बेईमान ? दो-दो लड़कियों को धोखा देने वाला ? सो भी एक ही साथ ! एक ही समय ! रञ्जना उसको क्या कहेगी ?

भावना ने करवट बदली । अरुण को अभी तक रञ्जना की ओर से भय का अनुभव हो रहा था । अब सहसा उसका हृदय रोष से भर गया। रञ्जना के प्रति रोष से । रञ्जना ने उसके साथ विश्वासघात किया था। वह उसी से पूछ लेती सब बात । वह क्या कुछ छुपाता ? कुछ भी नहीं छुपाता । वह साफ-साफ बतला देता कि वह साधना से प्रेम करता था...

करता था ! अरुण के मानस में टीस-सी उठ गई । साधना से प्रेम करता था !! यह कैसी आवाज है ? उसके अपने अन्तर की आवाज ! तो क्या वह अब साधना से प्रेम नहीं करता ? उस साधना से जो बचपन में उसकी साथिन रही है ? जो उसको देवता मानकर उसकी पूजा करती रही है । जिसने उसके कल्याण के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं सोचा । कभी किसी अन्य ओर ध्यान नहीं दिया । अपने दुख-सुख की ओर भी ध्यान नहीं दिया । उस साधना से वह प्रेम नहीं करता ?

नहीं ! वह साधना से प्रेम करता है । प्राणप्रण से प्रेम करता है। किन्तु वह प्रेम कुछ अन्य प्रकार का है । वह प्रेम वैसा नहीं है जैसा कि रञ्जना के प्रति उसका प्रेम । रञ्जना के प्रति उसके प्रेम में तो कुछ उन्माद-सा है । उसे पागल बना देना वाला उन्माद । रञ्जना उसको अपनी ओर खींचती रहती है । प्रतिपल । प्रत्येक बार अधिक प्राबल्य के साथ । रञ्जना तो स्वयं उन्मादिनी है ।

और साधना ? साधना भी तो उससे प्रेम करती है । किन्तु उन्माद नहीं है उसके प्रेम में । वह प्रेम उसे अपने पास पाकर ही पुष्ट नहीं होता। वह प्रेम तो अपने आप में परिपूर्ण है । प्रणय-पात्र चाहे दूर रहे, चाहे पास । उस प्रेम की प्रेरणा कम नहीं होती । उसका ज्वार जर्जर नहीं हो पाता । ज्वार है ही नहीं उस प्रेम में । शान्त सागर सा लहराता रहता है।

किन्तु वह क्या प्रेम है ? तो प्रेम क्या है ? क्या है प्रेम की परिभाषा ?

अरुण को उत्तर नहीं मिला । और विचार का प्रवाह परिवर्तित होने

लगा। सम्भव है कि इस समस्त काण्ड से प्रेम का कोई सम्बन्ध ही नहीं हो! प्रेम का सम्बन्ध होता तो रञ्जना अकेली ही जाती। वह तो अकेली जा सकती है। सब जगह। मोटर दौड़ाती फिरती है। सब समय। जिधर भी जी चाहे। जिस समय भी जी चाहे। उसको रोकने वाला तो कोई नहीं। तो फिर वह अपने पिताजी को साथ लेकर क्यों गई?

कह तो रहे थे गाँव वाले। यही कि दिल्ली के कोई बड़े सेठ शास्त्री-जी से तत्त्वचर्चा करने आए थे और शास्त्री जी पर मुग्ध होकर उन्हें अपने साथ ले गए। तो फिर रञ्जना इसी काम से आई होगी। अपने पिताजी को शास्त्री जी से मिलाने। और क्यों आ सकती थी?

किन्तु उसका तो परिचय नहीं था शास्त्री जी से। शास्त्री जी के परिवार में किसी से भी नहीं। वह उस परिवार के विषय में जो कुछ जानती थी सो सब उससे ही सुना था। फिर वह उसको अपने साथ क्यों नहीं ले गई? टोकने की देर थी। वह तुरन्त चला चलता। वह रञ्जना का परिचय उस परिवार से करवाता। रञ्जना के पिता जी का परिचय भी।

परिचय करवाता! वह!! साधना और रञ्जना का परिचय!!! क्या परिचय करवाता? रञ्जना को वह क्या बतलाता? साधना के विषय में? केवल यही कि वह शास्त्री जी की लड़की है? और कुछ नहीं? किन्तु वह क्या साधना का परिचय होता है? तो क्या वह कह देता कि साधना उसकी प्रेमिका है। पुरानी प्रेमिका है......

फिर वही बात! अरुण ने माथा पकड़ लिया। साधना के विषय में वह क्यों ऐसा सोचता है? बार-बार! ऐसा क्यों सोचता है? ऐसा सोचना वह नहीं चाहता! वह इस विषय में कुछ भी सोचना नहीं चाहता। तो फिर?

मानस का एक पक्ष हँसने लगा। बात सीधी-सी है। तुम ही बिना कारण उसको उलझाए जा रहे हो। रञ्जना के पिता जी को किसी संस्कृत के पण्डित की आवश्यकता होगी। कह तो रहे थे गाँव वाले कि वे संस्कृत की पाठशाला खोलना चाहते हैं। और बस वे चले आए शास्त्री

जी को लेने। रञ्जना ने उनसे जिक्र कर दिया होगा। शहर के आदमी ठहरे। घर की मोटर-गाड़ी। सुबह-ही-सुबह चल दिए होंगे चढ़ कर। कोई तैयारी थोड़े ही करनी थी। किन्तु......

रञ्जना ने उनको यह तो बतलाया होगा कि शास्त्री जी का पता उसको कैसे मिला? अथवा नहीं बतलाया? नहीं भी बतलाया हो! नहीं ही बतलाया होगा। रञ्जना तो कभी उसको अपने घर ले नहीं गई। उसके पिता जी से वह मिला ही नहीं कभी। वे क्या जानें अरुण कौन है। शास्त्री जी को......

नहीं। रञ्जना के पिता जी तो उसे जानते हैं। कम-से-कम उसका नाम जानते हैं। कुछ और भी जानते हैं। मामा कह रहे थे कि सेठ जी अरुण की तारीफ कर रहे थे। मामा तो यही समझे बैठे हैं कि शहर के वे लोग अरुण के ही दोस्त हैं। बड़े लोग। गर्व से वक्ष विस्फारित था मामा का। गली-गली में अरुण की तारीफ कर आए थे मामा। लड़के ने शहर में जाकर कहाँ-कहाँ सिक्का जमाया है! किन्तु......

बात तो सच नहीं। वे लोग क्या उसके दोस्त हैं? रञ्जना है उसकी दोस्त। किन्तु रञ्जना के पिता जी...उन्होंने तो उसको कभी देखा तक नहीं। रञ्जना ने ही की होगी उसकी तारीफ। उनके आगे। और रञ्जना ने कोई बहाना भी बनाया होगा। यह बहाना कि अरुण किसी कारणवश उन लोगों के साथ जीतपुर नहीं जा सकता। क्या बहाना बनाया होगा? कुछ भी कह दिया होगा। तेज लड़की है वह। अरुण को बाजार में बेच आए, और अरुण को पता भी नहीं लगे कि वह बिक गया।

नहीं, रञ्जना की ही शरारत है सब। इसीलिए तो वह शास्त्री जी को सपरिवार उठा ले गई। साधना को भी ले गई। नहीं तो उसके पिता जी को शास्त्रीजी के परिवार से क्या काम था? उनको तो शास्त्री जी से काम था। शास्त्री जी उनके साथ दिल्ली आ सकते थे। शास्त्री जी का परिवार गाँव में रुका रहता। शहर में......

अरुण की कुछ भी समझ में नहीं आया। वह जितना ही सुलझने

की कोशिश करता था, उतना ही उलझता जाता था। कभी वह इस छोर से सोचता था। कभी उस छोर से। किन्तु गुत्थी किसी ओर से नहीं सुलझ पाई। और वह आधा रास्ता तय कर गया। पौ फटने लगी। दिल्ली की ओर से। थक गया अरुण। बेहद। शरीर में थकान भर गई। मन में भी। मन ही थक गया था उसका। इसीलिए तन भी थक गया। जब तक मन नहीं थका था तब तक तन भी नहीं थका था।

अरुण किसी सवारी की खोज करने लगा। पाँच बजे वाली गाड़ी! बीच के कई स्टेशन निकल गए। वह लौट कर पिछले स्टेशन पर पहुँचेगा तब तक गाड़ी वहाँ से भी निकल जाएगी। तो वह अगले स्टेशन पर गाड़ी पकड़ लेगा। किन्तु अगला स्टेशन तो अभी दूर है। वह वहाँ तक पहुँचेगा तब तक गाड़ी उसको छोड़ कर आगे चली जाएगी। तो फिर?

अरुण बैठ गया। सड़क के एक किनारे पर। पुलिया बनी थी। बैठ कर बस की राह देखेगा। दिल्ली को जाने वाली पहली बस आती ही होगी। अभी कुछ मिनट में। नहीं भी आए अभी। देर में सही। और वह नहीं चल सकेगा। अरुण बस की राह देखने लगा। वह दिल्ली पहुँचना चाहता था। तुरन्त। किस लिए? साधना से मिलेगा। कहाँ मिलेगा? कहाँ होगी साधना? रंजना ने उसे कहाँ रक्खा होगा? कौन जाने? वह तो रंजना की कोठी का पता भी नहीं जानता। कैसे ढूँढ़ेगा वह साधना को? कहाँ ढूँढ़ेगा?

किन्तु क्यों ढूँढ़ेगा? किसी को जरूरत हो तो कोई उसे ढूँढ़े। वह किसी को नहीं ढूँढ़ेगा। साधना को भी नहीं। क्यों ढूँढ़े वह साधना को? वह उसको पूछे बिना ही दिल्ली चली आई। उसको खबर तक नहीं दी!! और वह अपनी प्रत्येक बात साधना को बताता रहा! छोटी-से-छोटी बात। किन्तु साधना ने इतनी बड़ी बात उससे छुपा ली। छुपाया करे! उसकी बला से!!

उसकी बला से!! सहसा अरुण के मानस में फिर उथल-पुथल मच गई। ये तो साधना के शब्द थे! वह बार-बार कहा करती—मेरी बला से! अरुण का हृदय बिकल हो गया। साधना के लिए। वह

साधना को देखना चाहता था। उसी क्षण। साधना की मूर्ति उसके मानस में मूर्त हो उठी। आपादमस्तक। वह उसको बुला रही थी। अधीर हो कर। मानो वह किसी आपदा में ग्रस्त हो। अरुण उठ कर खड़ा हो गया। उसने पश्चिम की ओर देखा। अधीर होकर। धूल का बादल उठ रहा था उधर से। बस आ रही थी। अरुण की आँखों में आँसू आ गए। हर्ष के आँसू। वह अभी घण्टे भर में दिल्ली पहुँच जाएगा। साधना के समीप।

किन्तु साधना कहाँ मिलेगी ? वह तो उसका पता-ठिकाना नहीं जानता। कैसे खोजेगा वह साधना को ? कहाँ खोजेगा ? अरुण पथरा गया। बस निकल गई। धूल का एक बादल उसके सिर पर थोप कर। उसने हाथ उठाकर बस को रोका नहीं। काहे को रोकता ? वह जानता ही नहीं था कि उसे जाना कहाँ है।

और तब उसके स्मृतिपट पर रामेश्वर की मूर्ति उभर आई। रामेश्वर पुरी। वही जो बारहखम्भा रोड पर रहता था। वहीं तो मिला था वह रञ्जना से। रामेश्वर जरूर जानता होगा रञ्जना का पता। और इस समय घर पर ही होगा रामेश्वर। कॉलेज अभी भी मॉर्निंग का नहीं हुआ। दस बजे पहिला घण्टा बजता है। और रामेश्वर तो कार में बैठ कर जाता है कॉलेज। वह साढे नौ से पहिले घर से नहीं निकलेगा। अभी क्या बजा होगा ? अरुण ने घड़ी देखी। कलाई पर बँधी हुई। उसमें बारह बजे थे। अरुण का दिल बैठ गया। बारह बज गए ! !

अरे नहीं ! यह तो रात के बारह बजे हैं। इस घड़ी में। यह रात को ही बंद हो गई होगी। चाभी के बिना। वह चाभी देना ही भूल गया। सभी कुछ भूल गया। साधना को स्मरण करते-करते। अभी तो मुश्किल से सात बजे होंगे। अभी बस मिल जाए तो...

अरुण ने फिर पश्चिम की ओर देखा। एक धूल का बादल फिर दिखाई दिया। एक और बस आ रही थी। अब की बार वह नहीं चूकेगा। इस बस को वह नहीं खो सकता। अरुण दोनों हाथ पसार कर सड़क के बीचों-बीच खड़ा हो गया। और बस उसके बगल में आकर रुक गई।

उसके ऊपर एक धूल का बादल और थोपती हुई।

दिल्ली का बस-स्टैण्ड आया तब तक पौने आठ बज चुके थे। अरुण ने भागकर टैक्सी पकड़ ली। कह दिया—बारहखम्बा रोड चलो। तुरन्त। एक मिनट की देर नहीं होने पाए। इनाम मिलेगा। टैक्सी दौड़ पड़ी। हॉर्न बजाती हुई। बारम्बार।

रामेश्वर अपनी कोठी के लॉन में टहल रहा था। अरुण टैक्सी से कूद पड़ा। भाग कर पहुँचा वह रामेश्वर के पास। चौंक उठा रामेश्वर। पहिचाना नहीं अरुण को उसने। अरुण बोला : "रामेश्वर! रञ्जना का पता बता दो।"

रामेश्वर ने असमञ्जस में पड़कर पूछा : "रञ्जना! कौन रञ्जना!"

"अरे मैं हूँ, अरुण! तुमने पहिचाना नहीं?"

रामेश्वर ने उसे ध्यान से देखा। फिर वह आगे बढ़कर बोला : "ओ! अरुण! यह क्या भेष बना रक्खा है, यार!"

अरुण अधीर होकर बोला : "फिर बतलाऊँगा। फ़ुरसत में। अभी तो, यार! तुम पता बता दो।"

रामेश्वर मुस्कराने लगा। फिर बोला : "यार! महीनों से उसके साथ घूमते फिरते हो तुम! और पता पूछते हो रामेश्वर से!! यह क्या दिल्लगी है?"

अरुण ने कहा : "भाई! मैंने तो कभी उसका पता पूछा ही नहीं। कोई काम ही नहीं पड़ा।"

"तो अब क्या काम आ पड़ा!"

"एक बहुत जरूरी काम है। पता बतला दो। क्यों तंग करते हो, यार!"

"मोहब्बत के मारों को तंग करने में मजा आया करता है, अरुण!"

अरुण ने सिर झुका लिया। अब वह कैसे समझाए किसी को कि बात क्या है? तब रामेश्वर ने उसको रञ्जना की कोठी का नम्बर बतला दिया। दूसरे क्षण अरुण टैक्सी में बैठ चुका था। लपक कर। रामेश्वर को धन्यवाद कहना भी भूल गया वह। टैक्सी चाणक्यपुरी की ओर दौड़

पड़ी। हॉर्न बजा-बजाकर। बारम्बार। बड़ा मीठा लग रहा था वह हॉर्न। अरुण को। उसे जो हार्न से बेहद चिढ़ता था।

टैक्सी जिस कोठी के आगे रुकी उसका वैभव देखकर अरुण का मानस भय से भर गया। बड़ी-सी कोठी थी। भव्य भाव से बनी हुई। कोठी के सामने उद्यान था। लॉन की छटा देखकर अरुण का साहस नही हुआ कि उस ओर पाँव भी बढ़ाए।

उसने ड्राइवर से कहा: "सरदार जी! जरा इस कोठी में जाकर पूछिए कि क्या यहाँ रञ्जना नाम की कोई लड़की रहती है। अगर रहती है तो उसको खबर दे दीजिए कि उससे मिलने कोई आया है। कोई क्या, कह दीजिए अरुण आया है।"

ड्राइवर तुरन्त भीतर चला गया। और तब अरुण ने अपने-आपको सँभाला। विण्डशिल में लगे शीशे में अपना मुख देखा उसने। और तब उसको ध्यान आया कि उसने उस वेश में उधर आकर ठीक नही किया। वह रामेश्वर से रञ्जना का पता पूछकर अपने बासे पर जा सकता था। और फिर नहा-धोकर यहाँ आ सकता था।

किन्तु अब तो कोई रास्ता नही रह गया था। अरुण ने आँख उठाकर लॉन की ओर देखा। ड्राइवर के साथ रञ्जना उस ओर आ रही थी। अरुण ने झटपट अपने कपड़े झाड़ लिए। सिर भी झाड़ लिया। मुख भी रूमाल से पोंछ लिया। किन्तु तब भी वह वैसा ही रह गया। भूत-सा। विशेष परिष्कार नहीं हो पाया उसका।

रञ्जना निकट आई। अरुण टैक्सी का दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया। रञ्जना उसको देखकर एक क्षण अवाक् रह गई। अरुण ने सिर झुका लिया था। तब रञ्जना ने उसका कन्धा छू कर कहा: "यह क्या, अरुण! ड्राइवर ने नाम नही बतला दिया होता तो मैं तुमको पहिचानती भी नहीं। एकबारगी! क्या भाड़ झोंक कर आ रहे हो?"

अरुण ने जेब से टैक्सी के पैसे निकालते हुए कहा: "जीतपुर गया था। कल साँझ को। वहीं से आ रहा हूँ। सीधा।"

रञ्जना के होठों पर मुस्कान की एक रेखा फैल गई। किन्तु उसको

तुरन्त छुपाती हुई वह गम्भीर बनकर बोली : "खैरियत तो है ना ?"

अरुण ने कहा : "यह सवाल तो मैं तुझसे पूछूँगा।"

"मुझसे ! मुझे जीतपुर की क्या खबर ?"

"संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ की खबर तू न रखती हो।"

"है। एक ऐसा स्थान भी है।"

"कहाँ है वह स्थान ?"

"तुम्हारे मानस में।"

ड्राइवर रेजगारी गिन रहा था। अरुण ने रञ्जना की बात सुनकर ड्राइवर की ओर देखा। और वह शरमा गया। मुख आरक्त हो उठा उसका। तब रञ्जना उसका हाथ पकड़ कर कोठी के भीतर ले चली। अरुण ने कहा : "ऐसे नहीं, रञ्जना ! देखती नहीं मेरा हाल ? कोठी के भीतर नहीं जाऊँगा।"

रञ्जना ने पूछा : "तो आए ही क्यों थे ? इतने ताबड़-तोड़ ?"

"तुझसे एक बात पूछनी थी।"

"सड़क पर खड़े-खड़े ?"

"साधना कहाँ है ?"

"मुझे क्या मालूम ?"

"बतला दे, रञ्जना ! नहीं तो ठीक नहीं होगा। तूने मुझे बहुत हैरान किया है।"

"हैरान तो तुम अपने-आप हुए हो। मुझसे कह देते जीतपुर जाना चाहते हो। मैं तुम्हें भी ले जाती अपने साथ। डैडी तो पूछ रहे थे कि अरुण को साथ क्यों नहीं लिया। मैंने कह दिया था कि तुमको फुरसत नहीं है।"

"तेरे जीतपुर के प्रोग्राम की खबर थी ना मुझे !!"

रञ्जना हँसने लगी। अरुण आधे रास्ते आकर खड़ा हो गया। तब रञ्जना ने उसे टोका : "चलो ना !"

अरुण ने कहा : "भीतर नहीं जाऊँगा ! सब लोग न जाने क्या सोचेंगे ?"

"सब लोग कौन ? इस समय कोठी पर केवल डैडी हैं। और वे तो तुम्हारे बारे में सब-कुछ जानते हैं।"

"क्या जानते हैं वे ?"

"यही कि तुम देहाती हो, गँवार हो।"

"नहीं, रञ्जना ! मेरी तो हिम्मत नहीं होती। उनके सामने।"

"तो उनकी लड़की से दिल लगाने की हिम्मत कैसे कर बैठे ?"

अरुण हँसने लगा। रञ्जना की आँखों में उमड़ता हुआ उद्गार देख-कर। उद्वेग था उस उद्गार में। अरुण एक क्षण के लिए साधना को भूल गया। वह खड़ा-खड़ा रञ्जना को देखता रहा। तब रञ्जना फिर उसका हाथ पकड़ कर ले चली।

पोर्च में पहुँचकर अरुण को फिर साधना का ध्यान आया। उसने पूछा : "साधना कहाँ है, रञ्जना !"

रञ्जना ने भी पूछा : "कौन साधना ?"

"जिसको तू जीतपुर से लाई है।"

"किसको लाई हूँ ? तुम क्या भाँग पीकर आए हो, अरुण !"

"देख, रञ्जना ! बहुत हो चुका। तू मुझसे और मजाक मत कर !"

"मैं मज़ाक मैं कर रही हूँ या तुम खुद मज़ाक बन रहे हो ?"

अरुण अपना हाथ छुड़ा कर वापिस लौटने लगा। और रञ्जना फिर खिलखिला कर हँस पड़ी। वह ताली पीटकर बोली : "देहाती कहीं के !"

अरुण भी गुर्राया : "हाँ, देहाती हूँ। किन्तु तेरी तरह दग़ाबाज़ नहीं।"

"क्या दग़ा कर दी तुम्हारे साथ ?"

"तू जीतपुर क्यों गई थी ?"

"वहाँ क्या तुम्हारी जमींदारी है ? और खुली सड़क जाती है वहाँ। कोई भी जाए।"

"तू साधना को क्यों ले आई ?"

"क्यूँ नहीं ले आती ? साधना क्या तुम्हारी जायदाद है जो मैं चुरा लाई ? जाओ, पुलिस में रिपोर्ट करके देख लो।"

अरुण हार गया। वह नरम पड़कर बोला : "साधना है कहाँ ?"

रञ्जना ने कहा : "मैंने कैद कर रक्खा है। अपने पूजाघर में। बहुत दिन से रीता पड़ा था वह पूजाघर।"

"मुझे वहाँ ले चल।"

"नहीं, कैदी तुम से डरता है। कहता कि तुम बहुत खतरनाक आदमी हो।"

"रञ्जना ! तू नहीं मानेगी तो मार बैठूँगा।"

"हमारे घर के भीतर ! है हिम्मत !" अरुण फिर हार गया। वह खड़ा-खड़ा रञ्जना की ओर देखता रहा। रञ्जना उसे देख-देख कर मुस्करा रही थी।

इसी समय कोठी में साधना का कलकण्ठ कूक उठा :

सखी री ! मेरे नैणा बाण पड़ी...

अरुण से नहीं रहा गया। वह साधना के स्वर का संधान करता हुआ कोठी में घुस गया। रञ्जना उस के पीछे-पीछे चल रही थी।।

एक कमरे का द्वार खोल कर देखा अरुण ने। साधना बैठी गा रही थी। द्वार की ओर पीठ किए। वही पुरानी मूर्ति थी यह। शुभ्रवसना। पीठ पर वही चूर्ण चिकुरभार चमत्कृत था। अरुण से नहीं रहा गया। वह भीतर जा कर बोल उठा : " साधना !"

साधना का गान रुक गया। उसने मुख मोड़ कर अरुण की ओर देखा। अरुण के बराबर में खड़ी रञ्जना की ओर भी। फिर वह उठ कर खड़ी हो गई। और बोली : "आ गए, अरुण ! बहुत ठीक समय पर आए। आओ, बैठो इस आसन पर।"

साधना के सामने की ओर एक बड़ी सी चौकी रक्खी थी। वस्त्र से आच्छादित। किन्तु रिक्त। साधना ने अरुण का हाथ पकड़ कर उसे आसन पर बैठा दिया। फिर वह रञ्जना का हाथ पकड़ कर बोली : "रञ्जना ! तू अरुण के बराबर में बैठ जा।"

रञ्जना ने सकपका कर कहा : "मैं ! मैं क्यों ?"

"आज मैं भगवान युगल-मूर्ति की पूजा करूँगी। भगवान बहुत दिन

से एकाकी थे । आज उनकी जोड़ी मिल गई ।"

साधना के स्वर में न जाने था क्या। रञ्जना चुपचाप अरुण के बराबर में जा बैठी । और साधना आँखे बँद करके गा उठी :

राधा नँद-नँदन अनुरागी...

: ४ :

अरुण ने साधना से पूछा : "तू दिल्ली क्यों चली आई ?"

साधना ने उत्तर दिया : "रञ्जना की यही इच्छा थी । रञ्जना के पिताजी की भी ।"

"तेरी क्या इच्छा थी ?"

"मेरी इच्छा ? मेरी इच्छा क्या होगी ? मेरी इच्छा-अनिच्छा का तो प्रश्न ही नहीं उठता ।"

अरुण चुप हो गया । एकाकी बैठे थे वे दोनों । पूजाघर के फर्श पर । रञ्जना कहीं चली गई थी ।

साधना ने अरुण के माथे पर हाथ रखकर कहा : "मेरे कारण तुमको बहुत कष्ट हुआ, अरुण !"

अरुण बोला : "कष्ट तो कुछ नहीं हुआ । और जो कुछ हुआ हो तो अब याद नहीं । अब तो तू मिल गई, साधना !"

"मैं कहाँ खो गई थी ?"

"वाह ! एक चिट्ठी का तो तूने उत्तर नहीं दिया । और दूसरी लौट आई । मेरा तो दिल बैठ गया ।"

साधना मुस्कराने लगी ।अरुण को देख-देखकर । अरुण से नहीं सहा गया वह देखना । उसने सिर झुका लिया । साधना ने उसका सिर ऊपर उठाकर पूछा : "क्या बात है, अरुण !"

अरुण बोला : "तूने मेरी चिट्ठी का जवाब क्यों नहीं दिया ?"

"और तुम जो हजम कर गए मेरे पत्र ! कई-कई । तुमने उत्तर क्यों नहीं दिया ?"

"मैंने तो बतला दी थी अपनी बात । उस पत्र में ।"

"बात तो कुछ भी नहीं बतलाई ।"

"सब तो बतला दी थी। साफ-साफ। तू भूल गई उस पत्र में क्या लिखा था ?"

"नहीं, एक अक्षर भी नहीं भूली।"

"तो फिर ?"

"वह कौन-सी बात है, अरुण ! कुछ भी तो बात नहीं। तुम रञ्जना से प्रेम करते हो। यह तो बहुत ही शुभ समाचार है।"

"मेरा मज़ाक उड़ा रही है ?"

साधना ने अरुण का पाँव छूकर उत्तर दिया : "नहीं, अरुण ! अपने देवता की शपथ लेकर कहती हूँ, सच कह रही हूँ।"

अरुण ने साधना का हाथ हटाकर कहा : "तेरा देवता तो कोरा मिट्टी का माधो निकला, साधना ! अब तू उसको भूल जा।"

"यह क्या कहते हो, अरुण ! देवता को कैसे भूल जाऊँ।"

"देवता को न सही। उस मनुष्य को भूल जाओ जिसने देवता होने का मिथ्याचार किया था।"

"मिथ्याचार कौन-सा किया था ?"

"तुझसे प्रेम करने का।"

"प्रेम तो तुम अब भी करते हो। मुझसे।"

"तुझे विश्वास है ?"

"संशय ने छूआ ही नहीं मुझे।"

"सब-कुछ जानकर भी ?"

"हाँ, सब-कुछ जानकर भी।"

"अद्भुत है तू ?"

"क्यूँ ? इसमें क्या विशेष बात है, अरुण ! तुम्हारे प्रेम को मैंने कभी इतना कंगाल नहीं माना कि एक जनी को देते ही वह रीता हो जाए। प्रेम का पारावार बहता है तुम्हारे भीतर। मुझको जितना चाहिए वह मुझको मिल गया। किसी और को मिलता देखकर मैं डाह क्यों करूँ ? मैं क्या इतनी ओछी हूँ, अरुण !"

"तू ओछी होती तो विडम्बना ही क्या थी, साधना ! विडम्बना तो

यही है कि तू ओछी नहीं है...

रञ्जना ने घर में प्रवेश करके कहा : "यही तो मैं भी कहती थी।"

अरुण ने रञ्जना से पूछा : "तू क्या कहती थी ?"

रञ्जना बोली : "यही कि साधना बहिन बहुत महान है। तुम इसके बारे में झूठ बोलते रहते थे। मैंने कहा, मैं अपनी आँखों से ही देख आऊँ। जीतपुर जाकर। और देखा तो मेरे लोभ का किनारा नहीं रहा। आँचल में बाँध लाई बहिन को। अब अपना आँचल कभी नहीं खोलूँगी।"

'तू तो नहीं खोलेगी। किन्तु मैं तो खोल लूँगा।"

"देखती हूँ कैसे खोलते हो ?"

साधना बीच में ही बोल उठी : "अरे बाबा ! तुम दोनों झगड़ते क्यों हो ? मैं किसी के आँचल में नहीं बँधी। तुम दोनों ही मेरे आँचल में बँधे हो। और वह आँचल तो कभी नहीं खुलेगा। किसी से भी नहीं।"

रञ्जना साधना के गले से लिपट गई। और साधना ने उसका माथा चूम लिया।

तब रञ्जना बोली : "चल, सद्दो ! इन भूतजी को छोड़ आएँ। इनके बासे पर।"

अरुण बोला : "अपने घर पर नहाने-धोने नहीं देगी ना, रञ्जना !"

"नहीं नहाने दूँगी। यहाँ क्या कोई पब्लिक बाथ खुला है ? नहा-धोकर क्यों नहीं आए ? ऐसे भी कोई आया करता है किसी के घर पर ? भले आदमी के घर पर ?"

अरुण मुस्कराने लगा। गर्दन नीची करके। साधना उठ खड़ी हुई।

अरुण ने साधना से पूछा : "शास्त्रीजी और चाचीजी कहाँ हैं ?"

साधना ने रञ्जना से पूछा : "क्या वे लोग लौट आए ?"

रञ्जना बोली : "अभी कहाँ ? मैंने ड्राइवर से कह दिया था कि उनको गौरीशंकर और लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के दर्शन करा लाए। अभी देर लगेगी। तब तक हम इन साब से छुटकारा पा लेते हैं।"

अरुण ने कहा : "मैं बहुत खटक रहा हूँ ना, रञ्जना !"

रञ्जना ने उत्तर दिया : "बहुत। इतना कोई नहीं खटका। कभी भी

नहीं।"

तब वे तीनों बाहर निकल आए। पोर्च में रञ्जना की कार खड़ी थी। उसको देखकर अरुण ने कहा : "रञ्जना ! तू तो कह रही थी कि कार गई हुई है।"

रञ्जना बोली : "यह टटपूँजिया कार क्या शास्त्रीजी के लायक है ? बड़ी कार गई है उनको लेकर। डैडी की कार। यह छकड़ा तो मैंने तुम्हारे लिए ले रक्खा है।"

साधना हँसने लगी। एक बार रञ्जना की ओर देखकर। एक बार अरुण की ओर देखकर। और उसको हँसती देखकर अरुण और रञ्जना भी हँस पड़े।

अरुण के कमरे में पहुँचकर साधना ने एक बार चारों ओर दृष्टिपात किया। और उसका अधर कुञ्चित हो गया। कमरा अस्त-व्यस्त था। कहीं किताबें बिखरी पड़ी थीं। कहीं मैले कपड़े। कहीं चाय के बर्तन ! बिस्तर की चादर मैली थी। मेज पर धूल जमी थी।

साधना ने रञ्जना से पूछा : "तू तो यहाँ बहुत बार आ चुकी है, रञ्जना ! क्या यह कमरा सदा ऐसा ही रहता है ?"

रञ्जना ने कहा : "जैसा आदमी, वैसा उसका बासा। ये हज़रत खुद ही उलझ-पुलझ हैं। इनका कमरा क्या साफ़ होगा ?"

"तूने साफ़ नहीं किया ?"

"मैं क्यों करने लगी ? वाह, मैंने क्या ठेका लिया है इनका ? और मैं साफ़ कर भी देती तो क्या होता ? ये फिर वैसा ही बना लेते।"

साधना फिर हँसने लगी। और वह बोली : "अच्छा, तो तुम दोनों जरा देर बाहर घूम आओ। कहीं जाकर चाय वगैरह पी लो। मैं इतने यह कमरा साफ़ कर देती हूँ।"

रञ्जना ने कहा : "वाह, भई ! इन भूतजी के साथ यहाँ तक आते-आते तो प्राण सूख गए। अब फिर इनके साथ बाहर चली जाऊँ। नहीं, सद्दो ! तू चली जा इनके साथ। दिल्ली की गलियाँ देख ले। इतने में···

अरुण ने कहा : "मैं अपना कमरा अपने-आप साफ़ कर लूँगा। तुम

दोनों ही बाहर चली जाओ।"

रञ्जना बोली : "तुम अपने-आपको साफ़ कर लो तो बहुत बड़ा काम होगा।"

तब उन दोनों ने अरुण को नहाने-धोने भेज दिया। और वे स्वयं कमरे को साफ़ करने लगीं। अरुण नहाकर लौटा तो उसके लिए बरामदा साफ़ किया जा चुका था। वह वहाँ बैठ गया। और कुछ देर में कमरा साफ़ हो गया।

अरुण के साथ कुछ समय तक बैठकर साधना और रञ्जना उठ खड़ी हुईं। अरुण ने पूछा : "मैं किस समय आऊँ, रञ्जना!"

रञ्जना ने पूछा : "कहाँ ?"

"तुम्हारी कोठी पर।"

"काहे ? क्या काम है वहाँ ?"

"वाह! शास्त्रीजी के चरण छूने हैं। सरस्वती चाची के भी। उनको तो अपने हाँ रख लिया और मुझसे कहती है, क्या काम है ?"

"देखो, अरुण! शास्त्रीजी और उनके परिवार पर अधिकार का दावा किया तो मेरा तुम्हारा झगड़ा हो जाएगा। वैसे यदि शास्त्रीजी और सरस्वती चाची की इच्छा हुई तो मैं स्वयं उनको साथ लाकर तुमसे मिला जाऊँगी।"

"और मेरा जी करे तो ?"

"तो अपने-आपको सँभाल कर रखना। किन्तु..."

रञ्जना अपनी बात कहते-कहते रुक गई। कुछ गम्भीर हो गई वह। सहसा। न जाने क्यों ? एक क्षण उपरान्त वह अरुण से बोली : "हमारी कोठी पर तुम भूलकर भी मत आना, अरुण! मेरे कहे बिना कभी नहीं। आज हो गया सो हो गया। किन्तु ऐसी ग़लती तुम फिर कभी मत करना।"

अरुण का मुख उतर गया। किन्तु रञ्जना उसकी ओर देखे बिना ही साधना का हाथ पकड़ कर कमरे के बाहर निकल गई। और नीचे कार तक जाते-जाते उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे।

रञ्जना के बराबर में बैठकर साधना ने पूछा : "यह क्या बात है, रञ्जना! अरुण को तूने क्यों मना किया ? और तू रो क्यों रही है ?"

रञ्जना ने आँसू पोंछकर उत्तर दिया : "वह सब तू मुझसे मत पूछ, सद्दो ! तू जानती नहीं कि मैं कितनी दीन-हीन हूँ। कितनी विवश। भरे-पूरे घर के बीच दीन-हीन हूँ। स्वेच्छाचार के आडम्बर के पीछे विवश।"

साधना ने कुछ नहीं कहा। उसने रञ्जना का सिर सहला दिया। रञ्जना चुपचाप कार चला रही थी। कुछ दूर जाकर उसने साधना से पूछा : "दिल्ली देखेगी, सद्दो !"

साधना ने उत्तर दिया : "तू दिखाएगी तो जरूर देखूँगी ?"

"तो चल तुझे कहीं ले चलूँ। लगे हाथ।"

"नहीं, रञ्जना ! आज नहीं।"

"क्यूँ ? आज क्या बात है ?"

"आज तेरा जी ठीक नहीं दिखाई देता। तू घर चल।"

रञ्जना चुप हो गई। और इण्डिया गेट आने तक वह कुछ नहीं बोली। उसके मुख पर उदासी छाई थी। साधना ने कनखियों से देखा उस मुख को। और उसका हृदय भर आया। वह अपनी छाती में छुपाना चाहती थी उस मुख को। रञ्जना का सिर सहलाना चाहती थी वह।

रञ्जना ने इण्डिया गेट के मैदानों पर एक दृष्टि दौड़ाकर कहा : "सद्दो ! चल यहाँ कुछ देर बैठेंगे। अच्छी जगह है।"

साधना मान गई। और कार को एक ओर खड़ा करके वे दोनों उतर पड़ीं। मैदान पार करके झील के किनारे जा बैठीं वे। हरी-भरी घास पर। एक वृक्ष की छाया के नीचे।

रञ्जना की उदासी किन्तु नहीं मिटी। वह अन्तरिक्ष को देखती बैठी रही। निर्निमेष। टुकुर-टुकुर। साधना की आँखों से आँखें नहीं मिलाईं उसने। मानो आँखें मिलते ही वह अपने-आपको भूल जाएगी। मानो बाँध टूट जाएगा उसके हृदय का।

किन्तु साधना ने कुछ क्षण उपरान्त उसका मुख अपने दोनों हाथों में थाम लिया। और उसकी आँखों में अपनी आँखे डुबा दी। संवेदना भरी थी उन आँखों में। मर्म-वेधी संवेदना। रञ्जना के हृदय का द्वार खुल गया। उसने सुबक कर साधना की छाती में अपना सिर छुपा लिया। और

वह सिसकने लगी। साधना उसका सिर सहलाती हुई बैठी रही।

कुछ देर बाद, कुछ संयत हो जाने पर, रञ्जना ने कहा : "सद्दो ! तूने मेरा कवच तोड़ दिया। तो ले मेरे घाव भी देख ले।"

साधना मुस्करा दी। बोली कुछ नहीं। उसकी मुस्कान में स्वीकारोक्ति थी। वह चाहती थी रञ्जना के घाव देखना। और हो सके तो उन घावों पर मरहम लगाना भी।

रञ्जना कहने लगी : "अरुण हमारे घर में आना चाहे, और मैं उसे मना करूँ ! यह बात क्या किसी की समझ में आएगी ? अरुण मेरे लिए क्या-कुछ है, यह तू जानती है, सद्दो ! तुझसे तो कुछ भी छुपा हुआ नहीं है।"

साधना बोली : "मैं तो समझी थी कि तू ठट्ठा कर रही है। अरुण के साथ। तुझे बहुत ठिठोली सूझती है ना ! किन्तु फिर तेरा मुख देखकर मैं समझ गई कि बात कुछ और ही है। क्या बात है, रञ्जना ! बता दे मुझे। मुझसे कुछ मत छुपा, बहिन !"

रञ्जना ने कहा : "सद्दो ! तूने मेरे डैडी को देखा है। इसलिए तू समझती है कि बड़े शरीफ है मेरे घर के सब लोग। किन्तु यह तेरी भूल है। मेरे दोनों भाइयों को देखेगी तो तेरा विचार बदल जाएगा।"

"क्यूँ ?"

"बड़े पाजी हैं वे...

साधना ने रञ्जना का मुख पकड़ लिया। किन्तु रञ्जना ने उसका हाथ हटाकर कहा : "दे लेने दे गाली, सद्दो ! मेरा दिल ठण्डा हो जाएगा।"

साधना बोली : "बड़े भाइयों को अपशब्द नहीं कहते, रञ्जना !"

"बड़े भाइयों को नहीं। किन्तु बड़े भाई हों तब तो। वे तो कसाई हैं। कोट-पतलून पहनकर साहब क्या बने, सारी इन्सानियत ही भूल गए। अपने सिवाय किसी को कुछ समझते ही नहीं। मानो स्वयं सीधे आसमान से उतरकर आए हों। और इस धरती के और इन्सान कीड़े-मकौड़े हों जिन पर पैर पड़ जाए तो उनको कोई पाप नहीं चढ़ता।"

आवेश से गला रुँध गया रञ्जना का। साधना ने पूछा : "बात क्या है, रञ्जना ! क्या कर दिया उन लोगों ने ?"

रञ्जना ने उत्तर दिया : "उस दिन मनोज हमारी कोठी पर आ गया। मैंने ही बुलाया था। डैडी से मिलाना चाहती थी उसको। किन्तु डैडी से मिलना तो नहीं हुआ। पोर्च में वह जल्लाद खड़ा था। मेरा बड़ा भाई। मनोज के कपड़े-लत्ते देखकर झट से उसका अपमान कर दिया। मनोज को भी तैश आ गया। अभिमानी लड़का था ना। अपमान नहीं सह पाया। और उस जल्लाद ने आव देखा न ताव, मनोज के मुँह पर चाँटा उड़ा दिया। और फिर...

बात को पूरी न करके रञ्जना फिर रोने लगी। साधना ने पूछा : "मनोज कौन था, रञ्जना!"

रञ्जना भर्राए कण्ठ से बोली : "तू नहीं जानती उसको, सद्दो! अब तो वह इस संसार में भी नहीं है।"

साधना ने चौंककर पूछा : "क्या हुआ? वह कहाँ गया?"

"उसने अपमान की ज्वाला से जलकर जहर खा लिया। पोटाशियम सायनाइड। उसका कोई इलाज भी सम्भव नहीं रहा।"

"तू ने उसको समझाया नहीं?"

"मैं उस तक पहुँच ही कहाँ पाई? मुझे मालूम हुआ और मैं दौड़ी गई तब तक तो वह जा चुका था। न जाने कहाँ।"

रञ्जना एक दीर्घ निश्वास छोड़कर चुप हो गई। साधना ने कुछ नहीं कहा। वह सब समझ चुकी थी।

कार में बैठकर रञ्जना ने कहा : "मैं उसी दिन से नास्तिक हूँ, सद्दो! अरुण को पाकर भी मेरा विश्वास नहीं लौटा। अरुण बिल्कुल वैसा ही है। वैसा ही भोला-भाला। और वैसा ही अभिमानी। मैं अरुण के जीवन से नहीं खेल सकती। इसलिए मैंने आज उसका रास्ता रोक दिया। वह रास्ता रुका हुआ ही था। मैंने उसको कभी नहीं खोला। अरुण ही आज हठात् उसको खोल बैठा। भगवान्...नहीं, नहीं, मेरी किस्मत समझो कि आज उन राक्षसों में से कोई भी घर पर नहीं था। नहीं तो...

साधना ने कुछ नहीं कहा। रञ्जना ने कार की स्पीड तेज कर दी। और घर तक पहुँचने से पहिले उन दोनों में और बातें नहीं हुई।

चौथा परिच्छेद

: १ :

अरुण की परीक्षाएँ निकट थीं। वह अपनी पढ़ाई में लग गया। शास्त्रीजी नारायण प्रसादजी के साथ तत्त्वचर्चा मे रत हो गए। साधना अपने अध्ययन में लगी रहती थी। और सरस्वती नए घर की देख-रेख में। नारायण प्रसादजी ने उन लोगों को कुछ दिन अपनी कोठी में रक्खा था। तदनन्तर कोठी के पिछवाड़े की ओर उनके लिए तीन कमरे का एक छोटा-सा मकान उन्होंने बनवा दिया। इने-गिने दिनों में। जैसे बाजार से खरीद कर लाया गया हो वह घर।

सरस्वती कभी-कभी पूछ लेती थी कि अरुण उन से मिलने क्यों नहीं आता। साधना कह देती थी कि वह अपनी पढ़ाई में व्यस्त है। वैसे शास्त्री जी और सरस्वती जब भी अरुण से मिलना चाहते थे तब ही रञ्जना उनको अपने साथ ले जाती थी। अरुण के कमरे पर। उन्होंने अरुण से कई बार कहा था कि वह उनके नए घर में आए। अरुण ने बहाना बना दिया। उसके मन में मान था। रञ्जना की बात का। रञ्जना ने उसको अपनी कोठी पर आने के लिए ही मना किया था। किन्तु अरुण ने कभी उस ओर जाने का नाम नहीं लिया। भेद की बात साधना जानती थी। या रञ्जना। किन्तु उन दोनों ने वह भेद कभी खोला नहीं।

साधना और रञ्जना प्राय: नित्य ही एक नियत समय अरुण के पास जा पहुँचती थीं। कुछ समय उसके साथ बिताने ने लिए। रञ्जना ने सिनेमा अथवा कॉफी हाउस जाना एकबारगी छोड़ दिया। अरुण के

साथ अकेली घूमने का मोह अभी शेष था। साधना उसके इस मोह को जानती थी। उसने रञ्जना को कई बार कहा कि वह रोज-रोज उसके साथ नहीं जायगी। बहाने भी बनाए साधना ने। किन्तु रञ्जना ने एक नहीं सुनी। साधना को साथ लिए बिना वह घर के बाहर पाँव नहीं देती थी। दोनों जनी ऐसी घुल-मिल गई थीं जैसे जन्म-जन्मान्तर की जुडवाँ बहिन हों। एक माँ की जाई।

और साधना की देखादेखी रञ्जना अपनी पढाई की ओर भी ध्यान देने लगी। बहुत दिन से बन्द थी उसकी पढ़ाई। मनोज की मृत्यु हुई तब से। वह कॉलिज में जाती थी। नियमित रूप से। किन्तु क्लास में बहुत कम जाती थी। इधर-उधर उठ-बैठकर समय काट देती थी। कॉलिज जाना उसके लिए मन-बहलाव मात्र रह गया था। न वह घर पर ही कोई पढ़ाई-लिखाई करती थी। पुस्तक खोलते ही आँखें पथरा जाती थीं उसकी।

किन्तु अब सहसा वह क्लास में जाने लगी। नियमित रूप से। घर पर भी पढ़ने लगी। नियमित रूप से। और सबसे बड़ी बात यह हुई कि उसने कविता करनी छोड़ दी। व्यथा का सागर सूख गया। कविता निकलती ही नहीं थी उसके मानस से। अपनी पुरानी कविताओं पर भी उसको कई बार हँसी आ जाती थीं। उसने क्यों लिखी वे कविताएँ? कैसे लिखीं? मानो वह किसी सपने में बड़बड़ाई हो। मानस में माधुर्य संचित हो चला था। उस दिन की कडुवाहट को भूल गई रञ्जना।

एक दिन वह साधना और अरुण के साथ बैठी थी। कुदसिया बाग में। सांझ के समय। ऋतु सुहानी थी। किन्तु वातावरण में कुछ उदासी-सी छलक रही थी। अरुण ने रञ्जना से कहा : "रञ्जना! तेरी कविता सुने बहुत दिन हो गए। आज कोई कविता सुना दे। नई-सी।"

रञ्जना शरमा गई। वह बोली : "वाह! मैं कहाँ कविता करती हूँ?"

अरुण ने कहा : "झूठ बोल रही है! मैं जब कविता समझता नहीं था तब तो तूने मेरे कान खा लिए। जब देखो तब कविता की कौं-कौं। अब मैं कविता समझने लगा तो महँगी हुई जा रही है।"

रञ्जना और भी शरमा गई। साधना ने कहा : "सुना दे, रञ्जना ! मुझे तो मालूम ही नहीं था कि तू कविता करती है। अरुण को नहीं तो मुझको सुना दे।"

रञ्जना ने कहा : "अरी कहाँ, सद्दो ! मैं तो यूँ ही ..

अरुण बीच में ही बोल उठा : "साँझ के समय झूठ बोलने से पाप चढ़ता है। सातवें नरक में जाएगी।"

रञ्जना बोली : "अरुण ! कभी किसी से कोई गुनाह हो जाए तो उसके गीत नहीं गाया करते। उसके भेद को छुपाया करते हैं।"

साधना बोली : "कविता करना कौन-सा गुनाह है ? यह तो अच्छी बात है।"

रञ्जना ने कहा : "मैं किन्तु कविता कहाँ करती थी। मानस में कड़वाहट भरी थी। उसे उगलती रहती थी। शब्द-जाल और छन्द का सहारा लेकर। अब वह कड़वाहट मिट गई। अब मुझसे कविता नहीं होती।"

"बड़े भाइयों को माफ कर दिया ना ?"

रञ्जना ने चमक कर साधना की ओर देखा। साधना उसका भेद खोल रही थी। अरुण के सामने। रञ्जना ने आँखों-ही-आँखों में साधना से अपील की। किन्तु साधना नहीं मानी। उसने कहा : "मेरी बात का जवाब दे, रञ्जना !"

रञ्जना ने कहा : "क्या जवाब दूँ, सद्दो ! उनके विषय में जब सोचती हूँ तो मेरा मन घृणा से भर जाता है। रुपया कमाने के लिए वे क्या-कुछ नहीं करते। रात-रात भर शराब पीकर क्लब में व्यभिचार करते हैं। और...

रञ्जना ने बात पूरी नहीं की। उसके मुख पर आवेश उभर आया। साधना ने अरुण से कहा : "सुन लिया, अरुण !"

अरुण बोला : "मैं तो कुछ भी नहीं समझा।"

"जीवन में से जब भगवान् चले जाते हैं तो जीवन जहर बन जाता है। अपने लिए। औरों के लिए भी।"

अरुण कुछ नहीं बोला। रञ्जना भी नहीं। और बात उन तीनों में

नहीं हुई। किन्तु अरुण को छोड़कर वे दोनों जब घर लौटीं तो रञ्जना ने साधना के पास बैठ कर पूछा : "सद्दो ! अपनी उस बात का अर्थ समझा दे। वही जो तूने अरुण से कही थी—जीवन में से जब भगवान् चले जाते हैं तो जीवन जहर बन जाता है।"

साधना मुस्कराने लगी। रञ्जना की ओर देख-देखकर। रञ्जना ने पूछा : "क्यूँ मुस्करा रही है ?"

साधना ने उत्तर दिया : "तेरी बात पर।"

"मैंने क्या कुछ अटपटी बात कह दी ?"

"हाँ, बहुत अटपटी।"

"मैंने तो तेरी ही बात दोहराई थी।"

"किन्तु अर्थ क्यूँ पूछा ? अर्थ तो तू जानती है।"

"मन में संशय है। मेरे जीवन से भगवान चले गए। तो क्या मेरा जीवन भी ज़हर बन गया ? अथवा बन जाएगा ?"

"कौन कहता है कि तेरे जीवन से भगवान चले गए ?"

"मैं भगवान् को नहीं मानती, सद्दो !"

"मुख से तो कोई भी यह बात कह सकता है।"

"किन्तु मैं तो अपने मन की बात कह रही हूँ।"

"मन में तो तू भगवान पर मान किए बैठी है। भगवान को अमान्य कब किया तूने ?"

रञ्जना स्तम्भित रह गई। उसके अविश्वास का यह एक सर्वथा नया अर्थ था। कभी किसी ने किया ही नहीं था ऐसा अर्थ। उसने स्वयं भी नहीं। वह स्वयं अपने-आप को नास्तिक मानती थी। कहती थी और लोग भी उसको नास्तिक मानते थे। कहते थे। उसके डैडी भी उसको नास्तिक मान कर दुखी थे। तो क्या...

साधना बोली : "भगवान के विषय में तेरी एक कल्पना थी, रञ्जना ! कल्पना झूठी निकली। और तू रूठ गई। बस, इतनी सी तो बात है। तू इतनी सी बात को इतना बढावा काहे दिए जा रही है ?"

सच थी साधना की बात। रञ्जना को अपने पुराने विश्वास का

स्मरण हुआ । उस दिन वह मानती थी कि भगवान् दुष्टों का दमन करने वाले और सज्जनों के परित्राता हैं । किन्तु उसने जगजीवन में इस विश्वास की पुष्टि नहीं पाई । और विश्वास जर्जर हो गया । उस समय जब उसने देखा कि उसके बड़े भाई उसकी माँ को सता रहे हैं । और माँ शिकायत तक नहीं करतीं । उस समय जब उसने देखा कि उसके डैडी अपने लड़कों का समस्त कुकृत्य देखकर भी मौन धारण किए हुए हैं । उस समय जब उसने देखा कि उसके भाइयों ने भोलीभाली लड़कियों को धोखा देकर नष्ट कर डाला है । उस समय जब उसने देखा कि समाज में उसके भाइयों की मान-प्रतिष्ठा बढ़ रही है ।

और एक दिन वह विश्वास टूट गया । मनोज की मृत्यु के दिन । वह किसी प्रकार भी उस विश्वास को नहीं बचा पाई । उस दिन से उसका पूजाघर रीता रहने लगा । कैसे उत्साह से बनवाया गया था वह पूजाघर । डैडी अपने लड़कों से निराश हो चुके थे । उनका समस्त स्नेह रञ्जना पर केन्द्रित था । वह थी उनके विश्वास की प्रतीक । नित्यप्रति सन्ध्योपासना करती थी वह । उनके पास बैठकर तत्त्वचर्चा सुनती थी वह । किन्तु डैडी के लिए भी रञ्जना अपना विश्वास नहीं बचा पाई । डैडी को भी दुखी कर दिया उसने ।

साधना बोली : "रञ्जना ! महाभारत में एक कथा है । युद्ध समाप्त होने पर एक दिन भगवान् कृष्ण पाण्डवों को साथ लेकर शर-शय्या-शायी भीष्म पितामह के पास पहुँचे । पितामह की आँखों में आँसू आ गए । भगवान् ने आँसुओं का कारण पूछा । पितामह ने कहा—हे कृष्ण ! आप प्रतिपल पाण्डवों के साथ थे । फिर इन लोगों को इतना अपार दुख क्यों सहना पड़ा ?"

रञ्जना ने कहा : "यही तो मेरा भी प्रश्न है, साधना ! मैंने भी महाभारत पढ़ी तो यह प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठता था । विराट पर्व पढ़ते समय तो मेरी आँखों का पानी सूखा ही नहीं । द्रौपदी के समान सती-साध्वी नारी । युधिष्ठिर के समान महात्मा पुरुष । और उन दोनों को ही सबसे अधिक अपमान सहना पड़ा । क्यों ?"

"मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानती, रञ्जना ! मैं तो गीता का एक श्लोक जानती हूँ। तूने गीता पढ़ी है ?"

"नहीं, गीता मैंने नहीं पढ़ी। क्या श्लोक है ?"

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेताम् तरन्ति ते ।।"

"इसका अर्थ ?"

"भगवान् कहते हैं—मेरी इस दैवी माया का पार पाना दुसाध्य है। इस माया का पार वे ही पा सकते हैं जो मेरी शरण लेते हैं।"

"किन्तु भगवान् की शरण लेने के पहिले विश्वास चाहिए, सद्दो ! बुद्धि जब विद्रोह कर उठती है तो विश्वास क्योंकर पनप सकता है ?"

"बुद्धि से कभी कोई विश्वास नहीं पनपता, रञ्जना ! विश्वास तो हृदय में आविर्भूत होता है। ऐसा विश्वास जो बुद्धि के किसी भी घात-प्रतिघात से कुण्ठित नहीं होता। ऐसा विश्वास जो बुद्धि को ही कुण्ठित कर देता है।"

बात रञ्जना की समझ में नहीं आई। यह भी समझ में नहीं आया कि अन्य प्रश्न क्या पूछे। वह एक क्षण के लिए मौन रह गई। साधना की ओर देखती हुई। असमंजस की मुद्रा धारण करके।

साधना बोली : "रञ्जना ! संसार में जिस समय तूने अन्याय-अविचार देखा था उस समय यदि तू रो देती, जी भर कर रो देती, विकल होकर, विवशता से विद्ध होकर रो देती, तो भगवान् तेरे विश्वास में वृद्धि करते। किन्तु तूने तो बुद्धि की कतर-ब्योंत शुरू कर दी। तेरे हृदय का द्वार बन्द होने लगा। बुद्धि हृदय को कुण्ठित कर देती है। कर्कश भी कर देती है।"

"मैं और क्या करती, सद्दो !"

"संसार को बुद्धि के मानदण्ड से नहीं मापना चाहिए। संसार का स्पर्श हृदय की भावना से करना चाहिए।"

रञ्जना ने कोई और प्रश्न नहीं पूछा। साधना ने भी कुछ और नहीं कहा। कुछ क्षण तक वे दोनों चुपचाप बैठी रहीं। घनीभूत अन्धकार था

बाहर। किन्तु रञ्जना को अपने मानस में कुछ आलोक सा आभासित हुआ। वह बोली : "सद्दो ! तू मुझे संस्कृत क्यों नहीं पढ़ा देती ? पिता जी ने पढ़ाई थी। मैं सब भूल गई। और अँग्रेजी की पोथियों में तो कुछ मिलता नहीं, बहिन ! उन पोथियों को पढ़कर तो मेरा अहंकार ही फूलता रहता है।"

साधना ने कहा : "संस्कृत तो तुझे पिताजी पढ़ा देंगे। मुझको पढ़ने लायक संस्कृत ही आती है। पढ़ाने लायक नहीं। किन्तु उससे क्या होगा, बहिन !"

"मेरा भी कल्याण हो जाएगा।"

"पोथी पढ़कर किसी का कल्याण हुआ है ?"

"तेरा हो गया ना !"

साधना चुप हो गई। रञ्जना ने उसको झकझोर कर कहा : "तू कुछ कहती क्यूँ नहीं, सद्दो ! कुछ कह। बड़ी मीठी लगती हैं तेरी बातें। तू भी बड़ी मीठी लगती है। तू मीठी लगती है, इसीलिए तेरी बातें भी मीठी लगती हैं।"

साधना हँसने लगी। फिर वह बोली : "तो ले, तुझे एक भजन सुनाती हूँ।"

रञ्जना ने साधना के दोनों हाथ अपने हाथों में थाम कर कहा : "सुना, सद्दो !"

साधना गाने लगी। निम्न स्वर में। किन्तु सुस्पष्ट। गुरु नानक का शब्द था :

"अब मैं कौन उपाय करूँ !
जेहि विधि मन को संसय छूटे, भवनिधि पार परूँ।"
अब मैं...
जनम पाय कछु भलौ न कीन्हो, ताते अधिक डरूँ !
गुरुमत सुन कछु ग्यान न उपज्यो, पसुवत उदर भरूँ !
कह नानक, प्रभु बिरद पिछानो, तब हौं पतित तरूँ !
अब मैं कौन उपाय करूँ...

रञ्जना की सारी देह में रोमाञ्च व्याप्त हो गया। आँखें भीग गई उसकी। जीवन में प्रथम बार उसको ऐसे अनुभूति हुई थी। उसने साधना को अपनी छाती से लगा लिया। और फिर वह सिसकने लगी।

: २ :

अरुण ने परीक्षा पास कर ली। परीक्षाफल भी आ गया। वह यूनिवर्सिटी में फर्स्ट आया। छात्रवृत्ति मिल गई उसको। और वह एम०एस-सी० में भरती भी हो गया।

रञ्जना ने भी एम०ए० प्रीवियस की परीक्षा दे डाली। एम० ए० फाइनल में पहुँच गई वह। अब उसके मानस में वेदना नहीं थी। दृष्टि का दोष भी दूर हो गया था।

नारायण प्रसाद जी ने पाठशाला खोल दी। शास्त्री जी पढ़ाने लगे। अकेले अध्यापक थे वे। छात्र भी बहुत कम मिले। अपने आपको सुसंस्कृत समझने वाले सम्पन्न परिवारों का कोई छात्र भरती नहीं हुआ। वे सब तो पब्लिक और कॉन्वेट स्कूलों के प्रार्थी थे। लाइन लग जाती थी इन स्कूलों के सामने। छात्रों के सरंक्षक स्वप्न देखते थे कि किसी प्रकार उन की सन्तान अपनी संस्कृति के समस्त सस्कारों से मुक्त हो कर आधुनिक योरप का बाना पहिन ले।

साधना अपने भजन-पूजन और अध्ययन में व्यस्त रहती थी। सुबह-शाम। समय मिलते ही। दिल्ली में दो-चार दूकानें संस्कृत का साहित्य बेचती थीं। रञ्जना कई बार साधना को उन दूकानों पर ले गई। संस्कृत के विराट वाङमय का इतना बड़ा संग्रह देख कर साधना के हर्ष की सीमा नहीं रही। और वह मनचाही पुस्तकें खरीदने लगी।

एक दिन रञ्जना और साधना अरुण से मिलने गई थीं। इतवार के दिन। वे तीनों पहाड़ी पर जा बैठे। साँझ का समय था। दिन-भर का तपा हुआ अवनि-मण्डल गर्म साँसे ले रहा था।

रञ्जना ने कहा : "जिस भी अर्वाचीन पण्डित की पुस्तक पढ़ो, एक ही आलाप मिलता है। पहिले के सारे युग बर्बर थे। आज का युग सर्व-श्रेष्ठ है। और आगे वाला युग और भी श्रेष्ठतर होगा।"

साधना ने विस्मित होकर कहा : "ऐसी बात है ! यह तो ठीक नहीं ।"

"क्यों, सद्दो ! क्यों ठीक नहीं ?"

"तू ठीक मानती है ?"

"ठीक तो मैं भी नहीं मानती । किन्तु मेरे ठीक न मानने का कारण वह न भी हो जो तू मानती है । तेरी व्याख्या सुनना चाहती हूँ ।"

"तू क्या कारण मानती है ?"

"मै तो यही देखती हूँ कि आधुनिक सभ्यता ने मानव-जीवन को रस से रीता करके कूड़ा-कबाड़ से भर दिया । रेल, मोटर, तार, जूल बॉक्स । किन्तु अन्तर की उपलब्धि तो रही नहीं । मानव का अन्तर तो शून्य हो गया । इसलिए वह पागल कुत्ते की नाईं भटकता है ।"

"बात तो ठीक है । मनुष्य के भीतर जितनी ही शून्यता भरती जाती है, उतना ही उसका बाह्य परिग्रह बढ़ता जाता है । और अन्तर भरता है तो मानव आत्मतृप्त हो जाता है । उसे कुछ भी नहीं चाहिए । अपने अन्तर में ही जैसे रस का स्रोत उमड़ पड़ा हो । आँखें मूँदो, और मधुर रूप देख लो । साँस रोको, और मधुर गान सुन लो । बुद्धि का बक्सा बन्द करो, और अखण्ड शान्ति का उपभोग कर लो ।"

"अन्तर किस प्रकार भरता है ?"

"अनेक मार्ग हैं । अनेक पद्धतियाँ है । ज्ञान, भक्ति, योग । संसार को मिथ्या मान कर उससे मन हटा लो । परमार्थ की पूर्णता प्रकट होने लग जाती है । संसार को भगवान् की लीला मान कर अपना लो । चारों और वृन्दावन का रास-सा रच जाता है । चित्त-वृत्तियों का निरोध कर दो । चेतना परमतत्त्व को छूने दौड़ पड़ती है। मानो ब्रह्माण्ड का सारा सुख, सारा ऐश्वर्य, सारा वैभव मिल गया ।"

"संसार की ओर मन नहीं भागेगा ?"

"उधर भागता है, यही तो विडम्बना है । यह भागना रुका कि राह मिली ।"

"तुझको राह मिल गई ?"

"राह तो मिल गई।"

"कौन-सी राह ?"

"मेरी राह तो भक्ति की है। अन्तर में प्रेम का पारावार पाना चाहती हूँ।"

"अरी, सद्दो ! और प्रेम कहाँ समाएगा ? प्रेम से भर तो गई तू। रोम-रोम भर गया। अब तू अपना लोभ त्याग दे। किसी और के लिए भी कुछ छोड़ेगी या नहीं।"

साधना हँसने लगी। फिर वह बोली : "यह तू क्या कह रही है, रञ्जना ! प्रेम क्या बनिया के मटके में रक्खी मूँगफलियाँ हैं जो एक जने को वेचते ही औरों को नहीं मिल पाएँगी। प्रेम तो अपरिमेय है। कोई कितना ही ले ले। प्रेम के पारावार में कण भर भी कम नहीं होता।"

"तो फिर प्रेम को लेकर संसार में इतनी बढ़ाबढ़ी क्यों है ? इतना विद्वेष क्यों फैलता है ? मैं जिससे प्रेम करती हूँ उसको कोई और न हथिया ले—यही तो चिन्ता बनी रहती है, सद्दो !"

"अरी तू तो परिग्रह की बात कह रही है। परिग्रह प्रेम नहीं होता।"

"दोनों में क्या अन्तर है ?"

"प्रेम तो मुक्ति का मन्त्र है। प्रणयी को मुक्त कर देता है। प्रणय-पात्र को भी। और परिग्रह अर्थात् बंधन। वह सब को बन्धन में डाल देता है। प्रणयी को भी। और प्रणय-पात्र को भी।"

रञ्जना चुप हो गई। न जाने कैसी एक चिन्ता का-सा भाव मुख पर ले कर। अरुण ने साधना से पूछा : "साधना ! तू तो अपना कारण बता रही थी ? वह कारण जिसको लेकर तू आधुनिक सभ्यता के आत्म-गौरव को ठीक नहीं मानती।"

साधना ने कहा : "कारण तो स्पष्ट है। किसी मनुष्य को जब यह अहंकार हो जाता है कि उसके समान कोई नहीं हुआ तो तुरन्त ही उसका पतन हो जाता है। वस्तुतः मनुष्य का पतन हो चुकता है तभी तो अहंकार जागता है। भगवान की सृष्टि में क्या चमत्कारों की कमी है ? क्या कोई गणना है उनके वैभव की ? वे प्रतिपल असंख्य ब्रह्माण्ड बनाते-बिगाड़ते

हैं। फिर इस धरा पर रहने वाला क्षुद्र प्राणी यदि अपना अहंकार फुलाता है तो यह उसका मिथ्या मोह है।"

रञ्जना बोली : "सद्दो ! अभी उस दिन कॉलिज की एक आधुनिका से मेरा विवाद हो गया। वह भी कह रही थी कि आज जैसा युग पहिले कभी नहीं आया। मैंने कहा—इसका तो यह अर्थ है कि मेरे पिता मुझ से मूर्ख और उनके पिता उनसे मूर्ख ? इसी प्रकार सृष्टि के आदि तक ? वह बोली—इसमें क्या सन्देह है ! पिता होने से ही क्या कोई बुद्धिमान कहलाने का अधिकारी भी हो जाता है ? और मैं तो, सद्दो ! चुप हो गई। उत्तर ही नहीं बन पड़ा मुझ से।"

साधना बोली : "तू यह भी तो बतला रही थी कि आधुनिक आस्था के अनुसार अनागत और भी श्रेष्ठतर होगा।"

"हाँ, यह तो सब कहते हैं। वस्तुतः यह प्रगतिवाद का सिद्धान्त ही तो आधुनिकता का प्रतीक है।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि मेरा पुत्र मुझसे बुद्धिमान होगा और उसका पुत्र उससे बुद्धिमान। और यह परम्परा...

"परम्परा की बात छोड़, सद्दो ! पहिले तू यह बतला कि तुझको मूर्ख कहने वाला वह पुत्र जन्म कब लेगा ?"

रञ्जना खिलखिला कर हँस पड़ी। साधना ने शरमा कर सिर झुका लिया। किन्तु अरुण ने न जाने क्यों अपना मुख फेर लिया। तब रञ्जना ने अरुण से कहा : "जनाब ! आप अपनी तशरीफ का टोकरा जरा दूसरी ओर ले जाइए। हम लोगों की कुछ प्राइवेट बातें होने वाली हैं।"

अरुण भी यही चाहता था। रञ्जना की पहली बात सुनकर उसका हृदय व्यथा से भर गया था। वही कहीं अकेला बैठकर उस व्यथा का विश्लेषण करना चाहता था। उसको भय लग रहा था कि उसके मुख का भाव उसकी व्यथा को व्यक्त न कर दे। रञ्जना और साधना पर। रञ्जना का परामर्श पाकर वह तुरन्त उठकर चल दिया।

रञ्जना ने साधना का सिर ऊपर उठा कर कहा : "अरी तू तो बिना ब्याह करवाये ही बहू बन बैठी। बात क्यूँ नहीं बतलाती ?"

साधना ने नाराज-सी होकर कहा : "तू मार खाएगी क्या ?"

"नहीं, मैं तो मिठाई खाऊँगी ।"

"तो अपना ब्याह क्यूँ नहीं करवा लेती ?"

"मैं तो आज करवा लूँ । किन्तु कोई करे भी ?"

"मैं कह दूँगी ताऊ जी से । अभी चलकर ।"

"तो फिर एक बात मान ।"

"बोल ।"

"दोनों का ब्याह साथ-साथ होने दे । एक ही मण्डप में बैठकर वधू बनेंगी दोनों ।"

"तब तो वर भी एक ही होना चाहिये ।"

"यह बात नहीं मानूँगी । इस विषय में मैं अभी भी परिग्रह-परायण हूँ ।"

"मैं तो नहीं हूँ ।"

"तू अपना वर दे देगी किसी और को ।"

"क्यों नहीं ? वर चाहे तो और वर को कोई चाहे तो जरूर दे दूँगी ।"

"दिल नहीं फट जाएगा तेरा ?"

"दिल क्यों फटने लगा ? दिल तो तब फटे जब मैं किसी से कुछ ले लूँ । लोभ के वशीभूत होकर । किसी को कुछ देने में दिल नहीं फटता । वह तो और भी पक्का हो जाता है । और भी शुद्ध ।"

"तू तो अजीब लड़की है ।"

"गाँव की गँवार ! है ना ?"

"अब गँवार तो तुझको कैसे कह दूँ, सद्दो ! गँवार तो मैं हूँ । अंग्रेजी पढ़ी-लिखी गँवार । तू तो सुसंस्कार के शिखर पर चढ़ी बैठी है ।"

साधना ने फिर सिर झुका लिया । जब भी कोई उसकी प्रशंसा करता था तो उसको बहुत असमञ्जस का बोध होता था । हाँ-ना का एक शब्द भी नहीं निकलता था उसके मुख से । हाँ कहने योग्य अहंकार तो उसमें था ही नहीं । ना कहने से, वह जानती थी, बात और बढ़ेगी । इसलिए ऐसे

प्रसंग में वह सदा मौन का ही आश्रय लेती थी।

अरुण को उसके बासे पर छोड़कर रञ्जना और साधना चाणक्यपुरी चली गईं। साधना को बड़ी कोठी पर छोड़कर रञ्जना चुपके से कोठी के पिछवाड़े जा पहुँची। शास्त्रीजी के घर पर। सरस्वती रसोईघर में बैठी खाना बना रही थी। वे लोग रात को 'अधिक देर से नहीं खाते थे। शहर के लोगों की तरह।

रञ्जना को आई देख सरस्वती ने कहा: "आ बेटी! बैठ जा! थोड़ा-सा खाना खा ले। जिस दिन तू मेरा खाना खा लेती है उस दिन शास्त्री जी खाने की बहुत प्रशंसा करते हैं। तेरा शकुन ही ऐसा शुभ है।"

रञ्जना बैठ गई। फिर वह हँसकर बोली: "चाचीजी! आज मैं खाना खाने नहीं आई। आज तो मैं मिठाई पकाने आई हूँ।"

सरस्वती खिल उठीं। वे बोलीं: "कोई शुभ समाचार लाई है न, बेटी! शास्त्री जी को आने दे। अभी मँगवाती हूँ मिठाई। इतने तू अपनी बात बतला।"

रञ्जना ने पूछा: "बात मानोगी ना, चाचीजी! टाल तो नहीं दोगी?"

"मैंने क्या तेरी कोई बात टाली है कभी?"

"तो साधना का व्याह कर दो, चाचीजी!"

सरस्वती विभोर हो गईं। फिर वे बोलीं: "मैं तो कितने दिन कह रही हूँ, बेटी! लड़की सयानी हो गई। अपने घरबार की हो जाए। हमको भी छुट्टी मिले। तीरथ करना चाहते हैं। किन्तु शास्त्रीजी नहीं मानते।"

रञ्जना ने पूछा: "क्या कहते हैं वे?"

"कहते हैं, अरुण की पढ़ाई पूरी हो जाए। तब साधना का व्याह करेंगे।"

"अरे, चाचीजी! अरुण तो बावला है। वह क्या व्याह का इन्तजाम करेगा। ऐसे काम करना तो मैं जानती हूँ।"

"नहीं, बेटी! तू समझी नहीं। शास्त्रीजी कहते हैं कि अरुण को पूरी

पढ़ाई किए बिना व्याह नहीं करना चाहिए।"

"तो अरुण करता फिरेगा अपना व्याह। साधना का व्याह उसके कारण क्यूँ रुके?"

"तू भी बावली है, बेटी! साधना का व्याह हो जाए और अरुण का नहीं हो, यह कैसे हो सकता है?"

"क्यूँ? क्या दोनों ने साथ-साथ व्याह करवाने की क़सम खा रक्खी है?"

"क़सम ही खा रक्खी है। साधना ने अरुण को अपना वर माना तब से। यह क्या कोई आज की बात है? कितने साल हो गए। ये दोनों छोटे ही थे तब। एक दिन...

रञ्जना सहसा उठकर खड़ी हो गई। उसके सिर पर वज्रपात हुआ था। मुख सूख गया था उसका। आँखों के आगे अंधियारी आने लगी थी, किन्तु सरस्वती ने उसका यह हाल नहीं देखा। वे सिर झुकाए आटा सँवारने में व्यस्त थीं।

रञ्जना चल पड़ी, वह भाग जाना चाहती थी वहाँ से। उसी क्षण। वह छुप जाना चाहती थी कहीं। जहाँ से उसे कोई न खोज पाए।

रञ्जना को जाते देखकर सरस्वती बोलीं: "अरे, तू तो भाग रही है, रञ्जना! खाना खाकर जाइयो, बेटी! अभी सेक देती हूँ दो पराठे। साग तो बने रक्खे हैं।"

रञ्जना ने कहा: "मुझे भूख नहीं है, चाचीजी! फिर किसी दिन खाऊँगी।"

रञ्जना भाग निकली। सरस्वती फिर अपने काम में लग गई।

: ३ :

उस दिन के उपरान्त रञ्जना दो दिन तक बिस्तर में पड़ी रही। उसको ज्वर हो गया था। बहुत तेज। माथे पर बरफ की थैली रखनी पड़ी। किन्तु रञ्जना ने मुख से उफ तक नहीं की। केवल दवाई पीने के लिए ही उसने मुख खोला। वह चित्त लेटी रही। जैसे मरने की बाट जोह रही हो।

साधना सब समय उसके पलंग के पास बैठी रही। एक क्षण के लिए भी वहाँ से दूर नहीं हुई वह। अपना नहाना-खाना भूल गई। भजन-पूजन भी भूल गई। वह बैठी-बैठी प्रार्थना कर रही थी : "भगवान् मेरी बहिन की रक्षा कर। मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ। मैंने यदि जीवन में कुछ भी पुण्य किया है तो उसके विनिमय में रञ्जना को आरोग्य दे दे। मुझे पुण्य नहीं चाहिए।"

तीसरे दिन प्रातःकाल रञ्जना का ज्वर उतर गया। किन्तु वह कमजोर हो गई थी। साधना ने पूछा : "अरुण को बुला दूँ, रञ्जना !"

रञ्जना ने कहा : "नहीं, सद्दो !"

साधना चुप हो गई। वह जानती थी कि रञ्जना अरुण को देखकर स्वस्थ हो जाएगी। किन्तु रञ्जना के रास्ते की रुकावट भी वह जानती थी।

रञ्जना ने पूछा : "सलोनो कब है, सद्दो !"

साधना ने उत्तर दिया : "आज ही तो है।"

"तो तू अरुण को राखी बाँधने नहीं जाएगी ?"

"जाना तो चाहती थी। किन्तु अब कैसे जाऊँ ? तुझे छोड़कर।"

"मैं भी चलूँगी तेरे साथ।"

"ऐसी हालत में ?"

"डैडी की कार ले चलेंगी। ड्राइवर की जगह मैं नहीं बैठूँ तो कोई भय नहीं।"

"है हिम्मत ?"

"वाह ! हिम्मत तो अपन ने कभी नहीं हारी।"

रञ्जना उठकर खड़ी हो गई। और दस मिनट में वह तैयार हो गई। उसने कहा कि राखी इत्यादि सब सामान वे चाँदनी चौक से खरीद लेंगी। रास्ते में। कमलानगर जाते-जाते। साधना मान गई। और वह भी तैयार होकर चली आई।

अरुण के कमरे पर पहुँचकर रञ्जना ने अरुण से कहा : "अरुण ! आज जानते हो कौनसा पर्व है।"

अरुण बोला : "छुट्टी तो सलोनो की हुई है।"

"तो कुछ नक़दी है ना जेब में ?"

"क्यूँ ? नक़दी का क्या होगा ?"

"राखी तो मुफ्त में नहीं बाँधी जाती, जनाब ! बहिन को कुछ देना पड़ता है।"

अरुण चौंक उठा। उसने पूछा : "कौन बाँधेगा राखी ?"

रञ्जना बोली : "सद्दो !"

अरुण का दिल बैठ गया। उसने साधना की ओर देखा। वह था ..थ में लिए मुस्करा रही थी। अरुण ने सिर झुका लिया। उसके मु . एक शब्द भी नहीं निकला।

र... ने कहा : "हाथ निकालिए, जनाब !"

अ...ण ने अपना हाथ नहीं हिलाया। रञ्जना ने फिर कहा : "हमें देर हो रही है, अरुण ! शुभ-मुहूर्त बीता जा रहा है। अपना हाथ इधर करो।"

अरुण ने अपना बायाँ हाथ बढ़ा दिया। रञ्जना ने उस हाथ को हटाते हुए कहा : "रहे तुम गँवार के गँवार ! यह भी नहीं जानते कि राखी कौन-से हाथ में बंधवाई जाती है !"

अरुण ने यन्त्रवत अपना दाहिना हाथ आगे कर दिया।

और रञ्जना ने साधना की थाली से राखी उठाकर उस हाथ पर बाँध दी। साधना उसका हाथ पकड़ कर उसे रोके उसके पूर्व। अरुण एक क्षण अवाक् रह गया। फिर उसके मुख से निकला : "रञ्जना !!"

रञ्जना ने मुस्कराकर कहा : "हाँ, भैया ! कहिए क्या कहना चाहते हैं ?"

साधना ने झुककर रञ्जना के पाँव छू लिए। रञ्जना उसको उठाती हुई बोली : "अभी नहीं, सद्दो ! अभी मेरे पाँव छूने का समय नहीं आया। पाँव उस दिन छुवाऊँगी जिस दिन तू मेरी भाभी बनेगी। बाजे-गाजे के साथ।"